रेवा

[सोलह हृदयस्पर्शी कहानियाँ]

सम्पादक

इन्द्रबहादुर खरे

प्रकाशक

लोक-चेतना-प्रकाशन

जबलपुर ।

प्रथम संस्करण } सन् १९५० { मूल्य २॥)

दो शब्द

'रेवा' मेरी प्रिय कहानियों का संग्रह है।

'रेवा' के कुछ कथाकार देश-पर्यन्त जाने-माने कलाकार हैं; कुछ मध्यप्रदेश और उसके आसपास के प्रदेशों में प्रसिद्धि-प्राप्त हैं, कुछ प्रसिद्धि की ओर अग्रसर हैं, जिनकी भावी प्रसिद्धि के बारे में मुझे बड़ी बड़ी आशाएँ हैं।

'रेवा' के अंचल में गुलाब, बेला, चमेली, कचनार, हरसिंगार और गेंदा के साथ करौंदे और महुए के भी फूल हैं; यह विभिन्न-स्वभाव-सम्पन्न संग्रह इसीलिए कि आपको बहार का आनन्द मिल जाय। 'रेवा' में गति है, तेज है, तरलता है, और ताज़गी है। सुबह की शबनमी-धूप है, बसन्त की केसरिया-बयार है, और सावन-भादों के कजरारे बादल हैं!

'कथाकारों' के परिचय में मैंनें व्यक्ति का सर्व-अनुमान (Estimate) लगाने का प्रयास किया है। यही सजीव-परिचय है। साहित्यिक मीमांसा के विवाद-ग्रस्त सिद्धान्तों के निरूपण से मैंने अपने आपको जान-बूझ कर बचाया है।

'रेवा' के समस्त कथाकारों के प्रति मेरे मन में श्रद्धा, आदर, अभिन्न मैत्री, और सामीप्य की भावना हैं; उनके सहयोग के प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूँ। हृदय उनका है, कला उनकी है, मैंने तो संग्रहमात्र कर पाठकों के पास तक पहुँचा दिया है।

'लोक-चेतना-प्रकाशन' का यह चौथा पुष्प है। इस संस्था के प्रति भी हार्दिक धन्यवाद प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य हैं। आशा और विश्वास के साथ 'रेवा' अपने प्रिय पाठकों के हाथों में सौंपता हूँ।

शरद्-पूर्णिमा
सं० २००७
जबलपुर

—सम्पादक

अनुक्रम

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

मुहब्बत का रंग

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी के लिए अब परिचय की आवश्यकता नहीं रह गई है। उन्हें सब जानते हैं, उनसे सब प्रभावित हैं !

सतत संघर्षों के काँटों में पलकर जीवन पानेवाला यह गुलाब आज हिन्दी-साहित्य को अपने सौन्दर्य और सौरभ से मुग्ध कर चुका है।

६२ वर्षों का साधना-सम्पन्न जीवन व्यतीत करने के बाद भी चतुर्वेदी जी उमंगों और उल्लास की राजधानी के सम्राट हैं। वृद्ध होकर भी वे आज प्रलयंकारी तूफानों के ज्वार पर खेलते हुए परम्परा-पीड़ित समाज को अपनी चुनौती से झकझोर रहे हैं! तन से जर्जर हैं, पर आज भी उनके मन की कोइलियां पंचम स्वरों में कूक रही है।

द्विवेदी-काल की दोपहरी और साँझ, छायावाद के बसन्ती बादल, प्रगतिवाद की विद्रोह-भावना—तीनों के साथी, प्रहरी और प्रेरणा-स्त्रोत।

सख्त चट्टानों में भी सूझ की नई पग डंडियों के राही। परम्परा के अंधकार से निकालकर साहित्य को आत्मा के आलोक में लाने वाले भागीरथ। साहित्यिक ऋषि, तपस्वी और साधक। गद्य और पद्य के समान अधिकारी।

केसर-गुलाब सी देह में कोकिल से मादक प्राण। गौर-वर्ण। मँझोल कद। रतनारी लपटों में दमकता-सा वैष्णवी मुख। बर्फ-सी मूँछे। हंस-पंख सी धुली खद्दर की पोशाक। बोलने में अनुरोध भरा आमंत्रण। मुस्कराहट में परदेशी को भी बाँध लेने की आदत। गम्भीर अध्ययन में डूबा हुआ चिन्तनशील व्यक्तित्व!

मन की अन्दरूनी पर्तों तक भेदने वाली, सूक्ष्म, तीखी और नुकीली दृष्टि के स्वामी चतुर्वेदी जी की कहानियाँ हिन्दी संसार की अमूल्य निधि हैं। उनके कथा-नंदन की इस अलबेली कली की सुगन्ध में आपका मन भी गमक कर झूमें, अतएव यह 'मुहब्बत का रंग' —

———o———

मुहब्बत का रंग

[१]

छरहरा जवान । गोरा बदन । चेचक के दाग । कानों में सोने के दो बहुत पतले बाले पड़े हुए । आँखों में कल रात काजल लगाया था, जो अभी, दूसरे दिन के तीसरे पहर तक धुला नहीं था; मानो खाये हुए प्याज की बू हो, जो मिटने के लिये और वक्त माँगती हो । मांग पट्टी के बाल । हाथ में चांदी की, एक कांच का टुकड़ा लगी हुई अँगूठी । बोलने में उबासी आ रही थी, मानों कहीं से थक कर आया हो, और सोने की तैयारियां कर रहा हो । कुछ गुस्सैल स्वभाव—मानो सारा संसार उसके रूप की हाट में रेहन रखा हो । गर्व से कुछ बनकर, कुछ मटक कर, चलने की आदत । बैलों जैसे कांधे हिलें, और हाथी जैसे बेकाबू पाँव धूलवाली सड़क पर पड़ें कि धुएं जैसी कुछ धूल मुंह तक उड़े, और अंगारे जैसे पाँवों पर कुछ धूल राख जैसी चढ़ जाय । आदमी होकर, जरा में चिढ़ पड़ने, और थोड़े में रो पड़ने की आदत । झट से चमक उठने का स्वभाव । अपनी औरों पर की हुई भलाइयों की लंबी फेहरिस्त अपनी स्मृति की जेब में; किन्तु उससे दस गुनी बड़ी औरों द्वारा अपने पर किये गये अपकारों की फेहरिस्त । और इस बात का अल्हड़ अज्ञान कि अपकारों के औरों द्वारा होने पर भी, उपकारों की फेहरिस्त अपनी ही तबियत में छोटी होने के क्या मानी होते हैं । बनकर, सजधजकर, शहर की बीच सड़क पर से निकलने का स्वभाव । विदेशी व स्वदेशी और सर्वदेशी के भाव से परे, बिलकुल ठेठ देशी । वो पतली लाल किनारेदार, पर दाहिने घुटने पर पैबन्द वाली धोती । कुरता जरा कुछ मैला-सा, पर सफेद मलमल का, जिसके नीचे लाल रेशम की जाकिट । सफेद कुरता मैल से, और रेशम की जाकिट से संयुक्त झांई खाकर, सफेद कम दीखे, बैंगनी ज्यादः । पान ठूंसकर खाने, उसकी लाली की अँगुलियां दीवारों पर पोछने, और उससे बिगड़े ओठ, कुरते से सँभल कर पोछने की दक्षता ! ओंठो पर पानी । मूंछों का कुछ-कुछ आरोप-सा हो ऐसी उम्र, शायद मरदाने कपड़े बदन पर होने के कारण । भोपाली जुल्फ रखने की खबरदारी, और मुड़ी जुल्फ के गालों पर आने पर, उन्हें मुड़ा हुआ रखने के लिये, पीले

चंदन की, दोनों गालों पर दो बूंदें। सिर पर पाग, जरा टेढ़ी, बनक कुछ इन्दौरी। रियासत अनुराधापुर के निवासियों के सर पर प्रायः ऐसी ही पाग होती है। पाग का रंग मोतिया, पीलेपन की झांई, मारता हुआ। किन्तु उसकी नोक पर, कपाल पर लटकने वाली नई सभ्यता की 'द्वितीय चोटी' की कृपा से, तेल की कालिमा। दांतों में, सोने की कीलें। हाथ में, अंगुलियों की पोरों पर मेंहदी लगी हुई। प्रश्न पूँछने पर, गुर्राकर घूरने, उपेक्षा से जवाब देने, और फिर शरमा जाने का लहजा। हाथ में बुन्देलखंडी लाठी; पूरबी नहीं, जिसमें ऊँची गाठें होती हैं, और नीचे लोहे की सिमियां लगीं होती हैं, सीधी सादी पीली लाठी; जिसमें ऊपर सूत का, श्रावण की राखी फैशन का, रंगीन बुंदा लगा हुआ, और बीच बीच में चार चमड़े के बंद लगे हुए। ठिगना कद, उम्र को छुपाने का संयुक्त हथियार सा; आकर्षण का विक्रम अमर रखने का रामबाण नुसखा सा। देखने में गुस्सा, किन्तु बोलने में मुस्कराहट; मानों सतपुड़ा की इन दो घाटियों के बीच, कोई समथल जमीन ही न हो, जहां स्टेशन बन सके और आदत की गाड़ी ठहर सके। पड़ोस में रहने वाले जासौन गांव के मालगुजार के बिगड़ैल लड़के द्वारा फेंके हुए, कागज के चित्रों वाले सिगरेट केसों को जेब में संभाल कर रखने की सावधानता। कपड़े रंगने और उन्हें सँवारने की अच्छी थियोरेटिकल जानकारी, और उस पर जहाँ तहाँ मुँह मारना। गुलेल रखने और उसे अपनी नजर ही की तरह, बेगुनाहों पर, छुपकर आजमाने की कुछ सफल, और अधिक असफल आदत।

और यह कहानी, मैं उन लोगों के लिये तो लिख ही नहीं रहा, जिन्हें दुनियां में फुरसत नहीं है; या फुरसत कम है। इसका चरित्र नायक कोई हो, पाठक किसी को भी मानें; किन्तु इसका पाठक, और इसका आत्मा तो वही हो, जिसे जल्दी नहीं पड़ी है।

हां तो, कपड़े रंगने की जानकारी, मगर जात तेली। नाम भोला वल्द बच्चू, साकिन अनुराधापुर राज का अनुराधापुर शहर। किराये से गाड़ी चलाने का रोजगार। अनुराधापुर, गांव होकर, "राज" होने से शहर। महल में शहर चमके, सड़कों पर गाँव। रेल से दूर—६७ मील। हीरापुर स्टेशन से बैलगाड़ी चौथे दिन पहुँचे। सड़क कच्ची।

(२)

'तो सुस्ती किस बात की आती है ?' नसीबन ने कहा, 'जरा संभल कर यों सोचते हुए,' मानों अपना हक अजमाती हो।

रमजान बोला, तुम तो बस वैसी ही हो, बेल जैसी—बेर देखा न बबूल, सर चढ़ने को दौड़ पड़ीं।

जो लिपटता है, वह तो सर तक चढ़ेगा ही। कांटे में बदन कटवाना, क्या कोई यूंही अपना रोजगार बनायेगा। दस बीस चुभने वाली बातें सुनाते हो, और फिर सफेद लंबी दाढ़ी हिलाकर मुस्करा देते हो—यह सर चढ़ाने का न्यौता जो देते हो—अरे हां। जानते हो, आखिर लड़का है ! उसमान फौत हुआ है, तब उसे मुंह लगा रखा है। और आज जरा सी बात पर उसे नाराज करते हो। खिलौना तुम न ले दोगे, तो कौन ले देगा ?

रमजान रंगरेज है। नसीबन उसकी स्त्री है—रंगरेजिन। उनके एक ही एकलौता लड़का था—उसमान। कोई ११ बरस हुए, वह आठ बरस की उमर में मर गया। करीमन, उसमान की मां, और रमजान की दूसरी औरत, सौर से बाहर होते ही मर चुकी थी। उसमान को, उसकी "बड़ी मां" नसीबन ने पाला था। उसमान के मरने के बाद, रमजान की तबियत कहीं नहीं लगती थी। वह कपड़े रंगता तो, हौजों के बने रंग की तरफ ही देखता रहता, और तीसरे पहर से शाम हो जाती। रंगे कपड़े सुखाते समय दरख्तों की तरफ देखता तो उनकी डालियों, उनके पत्तों, और दरख्त पर बैठे पक्षियों की तरफ ही देखता रह जाता। नसीबन ने देखा, पुत्र शोक, एक ऐसा नाला है, जो उतरती उम्र के रमजान से लांघा न जायगा। उसने रमजान की याद के पैर रखने, और संकट के आरपार आने जाने के लिये, एक सजीव ढूंढ़ दिया। वह था—बच्चू तेली का लड़का भोला। बड़ी बड़ी आंखें, गोरा बदन, कोई १०-११ बरस की उमर। रमजान से बाबा कहता। और मुहल्ले में यदि कोई उसे डाँटता तो रमजान से आकर लिपट जाता। एक खूंटे से बंधते बंधते पशुओं को, घर और घरवालों से मुहब्बत हो आती है; भोला तो आदमी का बेटा था।

(२)

अब भोला बीस बरस का हो चला था। वह रमजान से जब बोलता, अधिकार की भाषा में। रमजान दिन भर उससे विनोद करता रहता। विनोद ऐसी तदबीर की, जिससे भोला की बेवकूफी की बातें टालने में सहारा मिलता, देरी से की जा सकने वाली बातों को जल्दी से करने की जिद्द करने पर देरी लगाने के लिये समय निकल आता,

और किसी अटपटी और अनहोनी सी बात की जिद्द यदि भोला करता, तो विनोद वह समय का वह खाली मैदान था,जो समस्याओं पर सोचने और उन्हें समझाने का समय दे देता । विनोद, अकरणीय कार्यों पर, न करने की बात कहने पर, जी पर ठेस न लगने देने, अधिकार का सिंहासन डांवाडोल न होने देने, और चेहरे पर गुस्से से शिकन पड़ने देने का मुलायम मसाला था ।

भोला को उसके एक दोस्त ने न्यौता दिया है कि, अनुराधापुर रियासत से लगी, विशाखापुर रियासत के एक गांव, सोनामाटी को, वह अपने दोस्त की बारात में जावे। तारुण्य, बारात में जाना, मित्र का न्यौता, जाति में "कुछ हूँ" दिखलाने की साध, और खूबसूरती---इन सब के साथ अगर हो चरम दारिद्रय, तो वह गांवों-खेड़ों की, खून में रवानी और बदन पर मांस रखने वाली तरुणाई को मौत, के घाट ले जाने तक विद्रोहिनी बना डालता है ! भोला, अपने चाचा के यहां रहता था, जो गरीब था, और चोरी के अपराध में दो बार सजा पा चुका था । उसके न मां थी, न उसके बाप था । नसीबन ही उसकी अम्मा थी, और रमजान उसका बाबा । अधिकार की यह बुरी आदत है कि वह अपनी मर्यादा सदैव ही लाँघता आया है ।

आज, रमजान ने भोला से कहा---बाबा, आज हमारी पगिया रँग दो !

'वाह रे लाट साहब के बेटे, न ढंग के कपड़े, न पैरों में जूतियाँ और पगिया रँग दो ।" जवाब पाया ।

ना बाबा, जूतों में तो तेल देकर रख दिया है । जूते तो खरीद लिये । कपड़े को रेशम की "जाकेट" क्या बुरी है---हां, मलमल का कुरता मैला है, उसे मैं धो लूँगा । न हो, उसे भी तुम रँग दो ।

रँग दो ! अरे लाट साहब, शादी तेरी है, या तेरे दोस्त की ! ब्याह में रँगा कुरता तो दूल्हा पहना करता है । तेरा कुरता कैसे "रँग दूं" । बारात में जाकर तो तू दुलहिन मांगने लगेगा ।

भोला या तो खुश होना जानता था, या गुस्सा होना । विवेक का कोई मध्य बिन्दु उसके स्वभाव के ठहरने के लिये न था ! उसने अपनी बाजी गिरती देख, नसीबन से कहा---देखा न अम्माँ तुमने ! आज बाबा, मेरी बात के पैर न जमने देंगे ।

रमज़ान ने क़हक़हा लगाया---अरे तेरी बात के पैर न सिर, जमें तो कौन जमें, और कैसे जमें ।

नसीबन ने कहा—अच्छा कुरता न रँगो। वह दूल्हा ही का रँगा रहने दो। पगिया तो उसकी रँग दो।

और भोला की ओर मुखातिब होकर कहा—बेटा, तेरी पाग ले आ।

पुरुष पर स्त्री के अधिकार की बात पर, मानव जन्म से ही विश्वास करता है। भोला तो बरसों की २० वीं २१ वीं सीढ़ी पर था।

नसीबन उठी, उसने हुक्के में तम्बाकू भरी। अंगारे चढ़ाये। हुक्के की नाल, अपनी ही फूंक से ठीक की। और रंगीन घर की उस साम्राज्ञी ने तम्बाकू की नियामत अपने बूढ़े सम्राट के सामने पेश की।

रमज़ान ज़रा खाँसा, फिर उसने अपना मुंह अपने गले पर पड़े गमछे से पोंछा, और हुक्के की गुड़गुड़ी मुंह में लेकर धीरे धीरे इस तरह गुड़गुड़ाने लगा, मानों जाड़े के दिनों, देर से लौटकर आया हुआ कबूतर, अपने घोसले में, अपने परिवार को पंखों में दबा प्यार से गुरगुरा रहा हो।

बचपन में, एक स्वस्थ बच्चा, अनेक बड़े आदमियों की दौड़ और फुर्ती अपने में रखता है। हुक्के की तम्बाकू अभी सुलगी भी न थी, कि भोला अपनी पाग लेकर आ गया और उसने रमजान के पैरों पर फेंक दिया—मानों वह उसकी आत्ममर्यादा हो, जो पगिया रँगवा लेने के लिये रिश्वत की तरह, पैरों पर बिखेरा गया हो।

रमज़ान ने हुक्के की गुड़गुड़ी मुंह से न हटाते हुए, पाग समेटी, और उपेक्षा से नसीबन की तरफ फेंकी। और कहा—यही आठ नौ जगह फटी पगिया है न, जिसे महज़ अच्छा रँग देने से वह इस तेली के बेटे को, ब्याह में रँगीला दीखने वाला छैला बना देगी।

देखो, अम्मा, बाबा कैसी बातें करते हैं—भोला ने कुढ़ कर कहा। और आंसू बहाते हुए अपनी पाग खुद समेटने लगा।

नसीबन बोली—ठहर, ज़रा ठहर तो। आंसुओं से रँगने से तो यह पाग, रंगीन होने से रही। इसे तो रँग से ही रँगना होगा। अच्छा कौनसा रँग चाहिये पाग का?

भोला बोला—बनिया बैठने तो देता नहीं, और कहे झुकता सा तौलना! बाबा कुछ बोलें भी तो!

अरे तो बाबा के बेटे, आज तो रंग तैयार नहीं है। रंग के तैयार करने में चौबीस घण्टे लगेंगे। वक्त की घड़ियां भी क्या कोई बिस्तरा है, जिसे जब चाहा लपेट लिया, और जब चाहा फैला दिया! और तेरी अम्मा क्या हो गई ––

मैंने तो अभी कुछ नहीं कहा––नसीबन ने जरा तमक कर कहा यह चीनी मिट्टी की मांट में रंग तैयार जो रखा है ?

रमजान, जरा खांसकर बोला––वह तो मोतिया रंग है।

भोला का मन, निराशा के बरसाती नाले में डूबते, थाह पा गया। बोला––मुझे भी तो मोतिया रँग का ही पाग चाहिये।

नसीबन बोली––लो अब तो रँग दो।

रमजान ने हुक्का हटा दिया। और अपनी मिरजई के बन्द खोलते हुए बोला––भोला लड़का है। मगर तुम तो नन्हीं नहीं हो। जानती हो कि वह चीनी मिट्टी की मांठ है। रियासत की फरमांरवा की पागें रँगने के लिये वह रंग तैयार किया गया है। घोड़ा बादशाह का हिनहिनाये और कल्लू मोदी अपनी खुड़जी उस पर रखने दौड़ें,––अजब मसल है! भोला को बारात में क्या जाना है, तुम्हें उसे सिंगारने के लिये चारों खूंट जागीर भी छोटी मालूम होती है।

नसीबन ने, पगिया उठायी और पानी में भिगोने लगी।

भोला बोला––अम्मा, मैं एक तो पगिया मोतिया रँग में रँगवाऊँगा, दूसरे बाबा जान, मुझे मेरी पाग वैसे हीं बांध कर देंगे, जैसी नवाब साहिब की पागें बांधा करते हैं और तीसरे स्वयं बाबा रँगेंगे, तो पगिया रँगी जायगी––नहीं तो भोला बारात न जायगा।

सन्धि की शर्तें रख दी गयीं। बूढ़ा रमजान, अपना निर्मल हास्य बखेर कर बोला––बादशाह सलामत की पाग, भिनसारी रात रँगी जायगी। और तेरी तो पहले रँगी जाना चाहिये। फिर नसीबन से बूढ़ा बोला––यह क्या मजाक करती हो ? यह पगिया कैसे रँगी जायगी ?

नसीबन बोली––नवाब साहब की पगिया जिन्दगी भर रँगी है, और जिन्दगी भर रँगेंगे। क्या उस रँग में एक डोब, किसी गरीब की पगिया को नहीं

मिल सकता ? और आखिर नवाब साहब की पागें भी तो तुम्हीं बँधी-बँधाई, डब्बों में बन्द कर के दोगे ? तब क्यों न तुम, एक पाग इस 'छोरे' की, उसी ढब पर बांध दो ।

रमजान चिढ़ा---बोला औरत जात जो हो ! क्या जानों नमक की कीमत, और रोटियों के हीले को । मैं तो रईस की पाग के रँग में, भोला की पाग नहीं डुबोऊँगा ।

नसीबन ऐसे चौंकी, जैसे उसकी आँखे खुल गयीं। बोली, तुम मर्द हो ।

और भोला की पाग उठाकर गीली ही, भोला के पास फेंक दी । और कहा कि जा रे बेटा । बिना मां बाप के छोरों को, पाग रँगते वक्त रँगरेज भी यह मालूम कर देना चाहते हैं, कि वे बिना मां बाप के हैं, और गरीब हैं । गरीब, गरीब को धुतकारे, और अमीर अमीर की सी कहे, इसे दुनियां कहते हैं ।

भोला के मुंह को लकवा मार गया । गीली पाग, नसीबन की देहरी पर ही पड़ी छोड़कर वह चुपचाप चला गया ।

(४)

रमजान बोला---लड़के की आँखों पर गुस्सा भरा था ।

नसीबन ने कहा---गुस्सा किस पर करेगा अभागा ।

रमजान---क्यों ?

नसीबन---पूंछते क्यों हो ? पगड़ी पीछे बारह आने ही तो मिलते हैं । इन पैसों से भी क्या भोला महंगा है ?

रमजान---वह रईस है । उसके रँग में मैं इसकी पगड़ी कैसे डुबा दूं ?

नसीबन---कैसे ? वैसे ही, जैसे मैं जरूरत पड़ने पर अपने बेटे उसमान की पाग डुबो देती । उसमान---

बूढ़ा हिल उठा---उसमान !

नसीबन ने कहा---भोला ने तुमसे उसमान का दुलार पाया है । तब पाग रँगवाने और बंधवाने कहां जावे ।

(५)

दलील वजनदार थी । हाईकोर्ट का फैसला था । दावा मय खर्चे के स्वीकृत हो गया ।

अनुराधापुर के रईस, सोनामाटी के पास से अपनी रियासत के गांव, गोलन डोह से शिकार करके लौट रहे थे। नवाब साहब के साथ, धारनीगढ़ के राजा शार्दूल सिंह, दो शिकारी, दो सरदार, और एक घुड़ सवारों की टुकड़ी थी। जो मोहनपुर के नाले से, सरकारी सवारी गुजर रही थी, तब बैलगाड़ियों के पास खड़े लोगों के झुण्ड के बीच, एक गोरे से छोकड़े को उन्होंने अपनी सी, ठीक अपनी सी पाग बांधे देखा। पाग का बांध वही था, बनक वही थी, पेच वैसे ही कसे थे रंग भी वही था। रईस ने अपने सर पर से पाग उतारी और देखा। यह रईस की पाग थी, जो सर से उतर रही थी। दोनों मिलाया! दो पागें, एक भीड़ में खड़े किसी खूबसूरत उठाईगीरे की और दूसरी अपनी दोनों, आपस में, अगर राई बढ़ती न थीं. तो तिल घटने के लिये तैयार भी न थीं। दुखती चोट, और अनहोना दुर्भाग्य मानों ऐसी चीजें हैं जो होकर रहें। जब रईस ने अपनी पाग उतारी तब भोला मुस्करा दिया। दो घंटे के बाद जिबह किये जान वाले जानवर भी हरी घास को, बड़े स्वाद से खाते हैं।

एक सिपाही घोड़े से उतरा। उसने नाले की घाटी पर चढ़ती हुई बैलगाड़ियों को रास्ते ही में ठहराया। उन सब गाड़ियों में तीन ऊपर चढ़ चुकी थीं। दो घाटी में फिसल कर नाले में वापस आ गिरी थीं। और दो अभी चढ़ी ही न थीं। अब इसके बाद से पूछ तांछ शुरू हुई।

किस गांव की बारात है?

अनुराधापुर की गरीब परवर!

कौन जात हो?

तेली सरकार!

क्या पेशा करते हो?

अपना ही पेशा—तेल बेंचते हैं!

कहां जा रहे हो?

घर—अनुराधापुर ही तो चल रहे हैं।

फिर, मोतिया पाग के छैल छबीले की तरफ घूम कर, सिपाही पूछने लगा—

तू कहां रहता है बे लौंडे?

वहीं अनुराधापुर !

किसका लौंडा है ?

तेली का लड़का हूँ ।

क्या नाम है तेरा ?

भोला ।

बाप का नाम ?

बच्चू ।

तेरा बाप क्या करता है ?

दूल्हे के बाप ने बीच ही में कहा, इसके मां बाप कोई नहीं है सरकार ! गरीब है बेचारा ।

सिपाही ने फिर पूछा—

तेरी पाग किस रँगरेज ने रँगी है बे ?

रमजान बब्बा ने ।

सिपाही ने झट से पाग उतारी और एक सा रंग, एक सी बनक, एक सी सुन्दरता देख कर भी यह गरीब की पाग थी, जिसे सिर से सदा के लिये उतारते हुए भी सिपाही के हाथ में झिझक की जगह न थी ! सिपाही ने घूर कर लड़के को इस तरह देखा, मानों खा जायगा । भोला सहम गया ।

दोपहर होता आ रहा था । मजदूर, खेतों में गेहूँ काटने में जुटे हुए थे । छोटे बच्चे पशु-धन को पानी पिलाने नाले पर ले जा रहे थे । आमों के मौर महक भी रहे थे, और झर भी रहे थे । सड़क की धूल उड़कर, राहगीरों के मुंह, उनकी आँखों और आंखों के पलकों के बालों तक को मटमैला किये हुए थी । गांव की मजदूरिनें, गेहूँ की पूले बांधते हुए गा रही थीं—

'जी में एक पहेली दूखी
दुनिया आज हरी कल सूखी ।

और शास्त्रों को रटे हुए पण्डित जी गेहूँ के फूलों की भीख मांगते हुए, एक हाथ में सुलगी हुई चिलम और बगल में डंडा दबाये अपने ज्ञान को तुलसी की इस वाणी के द्वारा औंधाये चले जा रहे थे ।

धरा को सुभाव इहै तुलसी,
जो फरा सो झरा, जो बरा सौ बुताना ।

और खेतों में, छोटे-छोटे बच्चे, वृक्षों पर चहकते पक्षियों को ढेले मार मार कर उड़ा रहे थे । हर इंच, हर मंजिल, दर दर पर, और पग पगपर, मौसम की तरह बैलगाड़ियां धीरे धीरे चली जा रही थीं ।

(७)

सीतलासहाय कांस्टेबल रजमान को खोजता हुआ बोला---चलो अब्बा तुम्हें दरबार ने बुलाया है !

नसीबन ने पूछा---क्या नवाब साहब बहादुर आ गये ।

सिपाही---हां, अभी लौटे हैं ।

रमजान---हमारा रईस बड़ा नामी है । परसूं कहीं पागें देखी, तबियत बहाल हो गई---फरमाया---इस बार पागों की रँगाई नहीं मिलेगी, इनाम मिलेगा । रमजान बब्बा, धारनीगढ़ के राजा साहब, इन पागों की रँगाई-बँधाई देखकर बाग बाग हो गये हैं । कल आकर इनआम ले जाना । सो उसी का बुलावा आया दीखे है । यह कह कर, कांस्टेबल से कहा---हवलदार साहब, बैठो, चलता हूँ ।

हवलदार बोला---सरकार ने जल्दी ही याद किया है । चलो वे इस वक्त दफ्तर में हैं ।

रमजान ने मिरजई पहनी । वह उसके पास उसके ईमान की तरह एक थी । सिर पर, उसकी बात की तरह एक ही रँग चढ़ा था और उसके अनुभव की तरह पुरानी थी । और डाढ़ी पर हाथ फेर कर, वह अपने पेट की मजदूरी की लाचारी से रँगे हाथों, चल पड़ा महल की तरफ ।

* * *

फरमा खां, कुर्सी पर बैठे थे । और एक टेबल पर सजा कर ६ पागें रखी थीं । कहना न होगा, कि इन छै पागों में से रईस की एक पाग, हटा दी गई थी, और भोला के सर से उतारी हुई पाग, इनमें मिला कर रख दी गयी थी । नवाब साहब ने पूछा---ये सब पागें हमारी ही हैं न रमजान ?

रमजान---आप ही की तो दीखती हैं हुजूर । छै पागें ही तो परसों रंग कर, खादिम दे गया था ।

नवाब---तब, तुम चोर हो, बेईमान हो ।

रमजान का स्वभाव, इस वक्त आंवलों की मोट था, जो फैल गया था, और समेंटे न सिमट रहा था । उसने धीरज संभाला और कहा---

रमजान ने हुजूर का नमक खाया है । उसकी पीढ़ियों में बेईमानी नहीं है ।

नवाब---दरबार के पागों की धुलाई रँगाई-बँधाई तुम्हें क्या दी जाती रही है ?---

रमजान---बारह आना फी पाग गरीब परवर ।

नवाब---और उस तेली के लौंडे ने क्या धुलाई दी थी ।

रमजान की गांठ अब सुलझ गयी । वह धीरज से बोला---हुजूर वह छोटा-सा बच्चा है ।

धारनीगढ़ के राजा ने इसी वक्त कहा---आपका रँगरेज आपको भी छोटा बच्चा समझता है, और बहलाने की कोशिश कर रहा है !

नवाब---बेईमान, साफ साफ बता । तेली के लौंडे की पाग का रंग, और बनक, दरबार की पाग के रंग की क्यों है ?

रमजान---खता माफ हो सरकार, यह नमक का, रोटियों का रंग है, और वह मुहब्बत का रंग है । वह मेरे बेटे की तरह है ।

इरादों के काले, जबान के खूंखार, कलम के शाहंसा; पैसों के भरपूर, रहम के खाली, और टूट पड़ने में जंगली जानवर को अधिकारी कहते हैं ।

घोड़े का हंटर उठा नवाब ने कहा---मुहब्बत का रंग, हरामजादे । ले तुझे इस शायरी का मजा चखाऊँ ।

रमजान ने छत की तरफ देखा---मानों शैतान के घर में खुदा को ढूंढ रहा हो । सिर ऊँचा किया---मानों प्रेम सर्वनाश के समय भी दामों से ऊपर उठ कर खड़ा रहना चाहता हो ।

रमजान ने कहा---माफ करो गरीब परवर, गरीबों को बेटे-बेटी समझें अन्नदाता । रईस, समुद्र की तरह इस समय, अपने आवेश में खुद डूब चुका था । रमजान पर---

हंटर, फिर हंटर, फिर हंटर ! रमजान खड़ा रहा । महल के पत्थर पिघल उठना चाहते थे । सारे अधिकारी मानो सोचते थे कि आज राजधानी के सुहाग पर हंटर पड़ रहे हैं । पर बिकी जीभ, और कायर कलेजे से टुकुर टुकुर देख रहे थे ।

चोर हमारी पाग चुराकर उस तेली के लौंडे को दे दी ?

रामजान धक्के मारकर निकाल दिया गया । उसकी मिरजई खून से लथ-पथ थी ।

मसजिद में नमाज पढ़ी जा रही थी । मंदिर में पूजन हो रहा था । गिरजा घर का घंटा बज रहा था । और रमजान अनुराधापुर की सड़क पर इस तरह जा रहा था, मानों हिमालय शिखर से ठुकराया हुआ हिमखंड है, जो गंगा बनता चला जा रहा हो ।

गाड़ियां लौटीं कि, खबर देने भोला, रमजान बब्बा के घर गया । कान्स्टेबल द्वारा बुलावा सुनते ही वह राजमहलों की ओर दौड़ा ।

रास्ते में लड़खड़ाता, कराहता, और आंसू और खून साथ साथ टपकाता रमजान मिल गया । उसे खून से लथ-पथ देखकर भोला उसके पैरों में लिपट कर बोला---यह क्या है बाबा---

रमजान बोला---मुहब्बत का रंग ऐसा ही हुआ करे, है बेटा !

श्रीमती उषा मित्रा

वह हंसी थी

श्रीमती उषा मित्रा

श्रीमती उषादेवी मित्रा अब तक लगभग एक दर्जन उपन्यास और ६०० कहानियाँ लिख चुकी हैं ।

श्रीमती मित्रा की मातृ–भाषा बंगला है । वे प्रारम्भ में बंग-भाषा के 'वसुमति' 'भारतवर्ष' और 'पत्र पुष्प' आदि पत्रों में आख्यायिकायें लिखा करती थीं । सन् १९३३ से हिन्दी में गल्प लिखना प्रारम्भ किया । सर्वप्रथम गल्प–– 'मातृत्व' 'हंस' में प्रकाशित हुई ।

श्रीमती मित्रा विज्ञापन–प्रचार से दूर रहने वाली एकान्त कला–पुजारणी हैं, साहित्या-साधिका हैं । सृजन नारी का सहज धर्म है । अतएव सृजनशीला उषादेवी साहित्य का सृजन करती हैं, निरन्तर लिखती रहती हैं, बगैर लिखे उन्हें जीवन में कुछ अलौनापन-सा लगता है ।

श्रीमती मित्रा ने जीवन और जगत दोनों की कहानियाँ लिखी हैं; जीवन और जगत दोनों को उन्होंने कलाकार की पैनी दृष्टि से ही देखा हैं । अतएव उनकी कहानियों में कोई 'वाद' नहीं और सब 'वाद' हैं–जीवन के मधुर-कटु अनेक चित्र उन्होंने उपस्थित किये हैं ।

श्रीमती मित्रा की प्रथम कहानी की स्वर्गीय प्रेमचन्द के मन पर यों प्रतिक्रिया हुई–"तुम्हारी कहानी पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो गया । मैं नहीं समझा था कि तुम इतना सुन्दर गल्प लिख सकोगी । शैली, भाव तथा चरित्र सभी दृष्टि से कहानी अच्छी है । . . . . ऐसी दस कहानियाँ भी तुम लिख दो तो हिन्दी के गल्प-लेखकों में तुम्हारा स्थान सर्वोत्तम हो जायगा ।" श्रीमती मित्रा द्रुतगति से लिखती गयीं और अब तक वे ६०० कहनियाँ लिख चुकी हैं । 'आँधी के छन्द', 'महावर' सान्ध्यपूरवी' 'नीम-चमेली' 'रागिनी' और 'मेघ-मलहार' कहानी-संग्रह छप चुके हैं । 'वाचन का मोल' 'पिया', 'पथचारी' उपन्यास काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ।

श्रीमती मित्रा की कहानियों में कला और जीवन का बड़ा सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है । प्रेमचंद के ही शब्दों में "श्रीमती उषादेवी की कहानियों में प्राकृतिक दृश्यों के साथ मानव-जीवन का ऐसा मनोहर सामजस्य होता है कि एक-एक रचना में संगीत का माधुरी का आनन्द आता है । साधारण प्रसंगों में रोमांस का रंग भर देने में उन्हें कमाल हासिल है ।"

वह हँसी थी

उषा मित्रा

[विद्रोह-बुद्धि परिस्थितियों से, संघर्ष की, सामर्थ्य-जीवन की क्रियाओं से, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से, निर्मित नहीं होती; वह आत्मा का कृत्रिम परिवेष्टन नहीं, उसका अभिन्नतम अंग है ।]

वह हँसी थी, अपनी इसी जिन्दगी में वह हँसी थी।

माघ की ठिठुरती रात. राजपथ के किनारे का पोस्ट–लाईट का उजेला भी जैसे शीत में जमकर धुँधला हो रहा था। सो तब दलवीर, अपनी फटी. मैली ओढ़नी को शरीर के चारों ओर से लपेटे हुए फुटपाथ पर सिकुड़ी बैंठी थी । घुटनों में मुँह छिपा लिया था ।

सामने की द्वितल-गृह की खिड़की से बिजली का प्रकाश निकल रहा था, दलबीर कभी आँख उठाकर देख लेती उस प्रकाश की ओर, ऐसे देखती जैसे उस प्रकाश से उसकी ठंड से ठिठुरी हुई आँखों को कुछ गरमी पहुँच सकेगी ।

पथ के उस ओर कोई कराह उठा। चौंककर दलवीर ने उस ओर देखा—पोस्ट-लाईट के नीचे कोई पोटली की तरह पड़ा हुआ है। सर्दी से जमकर रुकती हुई श्वांस उसकी चेतना पा उठी, मन को धीरज मिला—तो इस बर्फीली रात का कोई उसका साथी भी है ।

हवा की हल्की-हल्की मुस्कान उसके रोमकूपों में प्रवेश कर शरीर के रक्त को जमा दे रही थी। दलवीर को लगने लगा जैसे वह क्रमशः जमती जा रही है और जम कर अब वह पत्थर की बन जायगी ।

क्या पत्थर इसी तरह बनते हैं ? सोच उठी दलवीर–वे जो बड़े काले पत्थर देखने में आते हैं, क्या वैसे ही गृह-हीन मनुष्य ठंड में जमकर पत्थर बने हैं ? सोच रही थी वह और सोचती ही चली आयी—तो उसके दोनों बच्चे जो कि लाहौर में गड़े हुए हैं, वे भी जमकर अब तक पत्थर बन गए होंगे ?

संतोष और आग्रह से भर उठा उसका मन---बस, वह उन्हीं पत्थरों को उठा लायगी और अपने पलंग पर रख लेवेगी. हाँ, मखमल के उन्हीं गद्दों पर. और दूसरे पल वह चौंकी—कहाँ है उसका घर, मकान, मखमल के गद्दे---तकिए, दौलत ? वह तो सब कुछ लाहौर में छोड़ आयी है न ! और आज कलकत्ता के पथ पर भिखारिन, वह ठंड से सिकुड़ी बैठी है ।

आँखें उनकी खिड़की की बिजली की ओर उठीं; हँसी की मृदुगुंजना पर तृषित कान उसके लगे रहे। कोठे पर नारी हँस हँस कर बातें कर रही थी। पुरुष की हँसी तीखी थी ।

ऐसी सर्दी में भी तृष्णा से दलवीर का गला सूख गया । वहाँ से आँखें फेर लीं और अपने आप में चित्त को बटोर कर रखना चाहा ।

सो उसका वह प्यारा मुन्ना ? सिहर उठी दलवीर, अब भी गरम-गरम खून उसके हाथों को जैसे जला दे रहा हो । मुन्ना—उसका प्यारा मुन्ना, उन लुटेरों को देखेकर जिसे कि उसने अपने हृदय में छिपा लिया था·····।

ऊपर की खुली खिड़की से कोई वस्तु आकर उसकी गोद में गिरी, पिचपिचा सा कुछ । दलवीर एकदम सिहर कर अकड़ गयी---अरे यह तो मुन्ना का मृत शरीर ही है।

खून से रँगा शरीर, शरीर कहाँ ? मुन्ना को उसके हृदय से छीनकर, उन दुश्मनों सी आकृति के मनुष्यों ने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले थे और एक गेंद की तरह बनाकर उसकी गोद में फेंक दिया था। इसके आगे दलवीर और कुछ सोच न सकी ।

उसकी गोद में पड़ा हुआ था पिचपिचा-सा कुछ, जो कि ऊपर की खिड़की से किसी ने फेंका था । उसका मुन्ना, हाँ मुन्ने की रक्त-रंजित माँस की गेंद इतने दिनों के बाद क्या यहाँ उसके पास आ पहुँची है ?

चेष्टा करने पर भी दलवीर समझ न सकी कि वह क्या है ? सबेरा होने में देर नहीं थी । वह उसे लिए हुए बैठी ही रह गयी ।

भोर का प्रकाश तब भलीभाँति फैल भी न पाया था, जब कि दलवीर ने उत्सुक नेत्रों से गोद में पड़ी हुई वस्तु को देखा और देखकर घृणा से

सिकुड़ गयी. शायद पीकदान खिड़की के बाहर उड़ेल दिया हो किसी ने. सर्दी खाकर और पान का ठीक मिला हुआ लौंदा सा। जाने दलवीर कब तक वहाँ पत्थर की मूर्ति बनी वहाँ बैठी रही।

राजप्रासाद तुल्य अट्टालिका में रहने वाली सुन्दरी युवती दलवीर आज इस सीमा तक पहुँच चुकी है, कि दूसरे उस पर अनायास थूक-खकार फेंका करें. जाने उसका जी कहाँ से कहाँ भटकता फिरने लगा। लाहौर का सुख, आराम का जीवन उसका पति सरदार उसकी आज्ञा से उठता, बैठता। सब कुछ का अन्त कर दिया उन राक्षसों ने घंटे भर में- दो बच्चों को जमीन के अन्दर रख चुकी थी. तीसरा यह दूध पीता मुन्ना. उसे उसी की आँखों के सामने तड़फा कर मारा। मुहल्ले के सब भाग चुके थे और सरदार बैंक में रखे हुए रुपयों का बंदोवस्त कर तब हवाई जहाज के लिए गया हुआ था. उसी दिन वे भी पाकिस्तान छोड़ देते परन्तु। घंटा कट नहीं पाया था कि उसकी पूरी दुर्गति हो गयी। फिर उस पर कैसे-कैसे अत्याचार किए गए, सो वह कुछ नहीं जानतीं। वेसुध हो गयी थी न दलवीर !

दलवीर का वह थूक से सना हुआ हाथ मुँह पर आ गया. मक्खियाँ भिन-भिनाने लगीं मुँह पर, दुर्गन्ध से वह अतिष्ठ हो उठी। दलवीर उठी और झपटती हुई नल पर पहुँची, नल पर भीड़ थी. कोई बोला—'हट भिखारिन, मेरा घड़ा छू मत लेना।'

एक तिलकधारी ने दुतकारा—'दूर हो यहाँ से मुझे छू ही दिया।'

अपमान-लज्जा से दलवीर काँप उठी और फिर उन्मादिनी की भांति एक तरफ भाग दी।

दलवीर के सामने स्वच्छ, प्रशस्त गंगा बह रही थी. वह उसमें कूदी। घंटों उसने मलमल कर नहाया. किन्तु कपड़े उसके पास और नहीं थे। रेशमी बेल की ओढ़नी मैली होगई थी. रेशमी कुर्ता और सलवार पर मानो धूल जमी हुई थी, गंगा के शीतल जल में वह जमने सी लग गई। भीगे वस्त्र के भीतर से उसका रूप-यौवन निखर आया। कोई मनचले युवक ने सिनेमा का गाना छेड़ दिया। कोई दूर खड़ा दोहा कहने लगा, और दलवीर धूप में

पेड़ के नीचे सर नीचा किए बैठी की बैठी ही रह गई. अपमान सहते-सहते जैसे कि वह स्वयं ही मूर्तिमान अपमान बन बैठी हो।

विस्मय से दलवीर ने अपने अन्तर के प्रति निहारा, न उस हृदय में स्पन्दन था, न कम्पन था, केवल एक शून्य-महाशून्य। किन्तु वह हँसी थी—अपनी इसी जिन्दगी में हँसी थी।

वह हँसी थी—दूसरी और तीसरी नहीं, इसी जिन्दगी में वह हँसी थी सो झूठ नहीं है, और आज उसका जीवन आँसू की खान बना हुआ है, यह भी गलत नहीं है।

आँसू—बस, आँसू ही अविशिष्ट थे. अब उनके निकट आरा चलाती हुई वह कभी थक जाती, आँसू उमड़ आते, थके हुए हाथ उसके अवसन्नता से झुक जाते. मोटी गोल लकड़ी के दूसरी तरफ आरा पकड़े बैठी हुई वह मोटी काली स्त्री 'क्या फोले पड़ गए हाथ में ?'

बड़े से मैदान में मोटी मोटी लकड़ियों का ढेर, दस-बीस लकड़ी के दोनों ओर एक एक स्त्रियाँ बैठी आरे से उन्हें दो-दो टुकड़े कर रही थीं। उनके पास ही नंगे कई मजदूर, लकड़ियों को उठा-उठाकर रख रहे थे।

एक तरफ छड़दीवाली के घेरे में लकड़ी काटने की मशीन. अनवरत रघराहट आवाज किया करती, जिस आवाज़ ने दलवीर के मस्तक में घरघराहट को जन्म दे दिया था। उसे लगता वह आवाज़ उसके मस्तक के रक्त को जमा कर बस घरघराहट में परिणत कर देगी।

आरा चलाते-चलाते अनमना मन उसका अतीत में उलझ जाता. हाथ आरे से हट कर गोद में आ जाता और तब लकड़ी के ढेर पर बैठा हुआ लल्लू दरबान हाथ की छड़ी लकड़ी पर टेकता हुआ चिल्ला उठता—'मजदूरनी, काम करने आई है या सोने को ?'

उन सब को होती हुई कुत्सित हँसी, व्यंग, मजाक को सुन-सुन कर उसका जी घृणा से संकुचित हो उठता. वह उठकर खड़ी हो जाती हाँ दलवीर

वहाँ के वातावरण से भाग जावेगी. और तब लल्लू की घुड़की सुनकर वह पुनः बैठ जाती. भाग कर कहाँ जावेगी ? महिनों वह भूखी-प्यासी भटकती रही आई थी. कहीं न तो कोई काम मिला, न मुट्ठी भर अन्न ही। अन्त में वह इस लकड़ी के मशीन वाले कारखाने में आई और पास ही में एक छोटासा घर किराये पर ले लिया। दिन भर आरा चलाकर बारह आने पैसे मिलते, उससे वह दाल चावल खरीद लाती। धूप में बैठकर आरा चलाते चलाते जब उसका शरीर मस्तक तपकर अँगारा सा होता, तब पानी पीने के बहाने उठकर जरा छाया में खड़ी हो जाती। हाथों में पड़े हुए फोलों को रात में सेंकती। दर्द के मारे नींद न आती तो परछी में बैठकर आकाश के तारे गिन-गिन कर रात बिता देती। काम चाहे जैसा भी कड़ा हो, किन्तु उदरपूर्ति के लिए यहाँ पैसे पूरे मिल जाते। दलवीर ने सुना था कि मिल का मालिक रणधीर धनवान, दयालु और पंजाबी है, अत्याचारी नहीं. यद्यपि महीना भर उसे काम करते हुए हो गया था. किन्तु अब तक उसने मालिक को देखा नहीं था। वह बाहर गया हुआ था। आठवें दिन मिल का कर्मचारी सब के पैसे चुका दिया करता. मिल के निकट कोठी में मिल का मालिक रहता, कोठी के सामने की हरी फुलवारी को मिल-माली सींचा करता. फूलों पर भौंरे मंडराया करते. फव्वारे से पानी झरता रहता।

दलवीर जब पानी भरने जाती, तब उसकी आँखों में न जाने एक कैसी व्यथा भर उठती. वह वहाँ घंटों खड़ी बगीचे को देखती रहती. बगीचे के एक तरफ से माली आवाज़ लगाता—' नल बन्द करो, मजदूरनी. '

तब वह चौंक उठती—मजदूरनी ? आज यहाँ, जब कि सब कुछ का अन्त हो चुका है, तब ऐसे दुर्दिन में भी उसकी आत्मा अपमान से सिकुड़ सी जाती।

पैसे जोड़कर दलवीर ने सलवार, कुरता और जालीदार ओढ़नी बनवा ली थी। भोजन करते समय उसे रोना आ जाता। कहाँ बादाम, पिस्ते के कतरन, गुलाबजल पड़ी हुई लस्सी और घर की गाय के दूध की मोटी मलाई, मक्खन डबल रोटी, मुर्गी का सालन, बादाम का गरम-गरम हलुवा और कहाँ जौ की बाजरे की काली, मोटी सूखी रोटियाँ !

तरकारी कभी बनाती, कभी नमक मिर्च से खाती। बारह आने में इससे

अधिक कुछ हो भी कहाँ पाता ? फिर रोज मजदूरी मिलती भी नहीं. उस पर घर का भाड़ा, कपड़े बनवाना, मिट्टी का तेल ब्लैक-मार्केट से खरीदना. भोजन चाहे कैसा भी कर ले, परन्तु कपड़े तो चाहिये ही. गन्दापन वह आज इस दशा में भी सहन नहीं कर सकती । छोटा सा आइना, कंघा, क्लिप वह बाजार से ले आई थी. काम से लौटकर स्नान करती. साफ सुथरे कपड़े पहनकर घर के बाहर जरा टहलती । चप्पल भी खरीद ली थी ।

सोइतना सब कुछ सही है, परन्तु तो भी उसके मन की शांति लौटी नहीं थी। यदि जिन्दगी में वह हँसी थी—एक दिन तो आज उसके जीवन में आँसू ही अवशेष थे।

जीवन में वह हँसी थी. बात यह न झूठ है, न बनावटी और उस हँसी की ध्वनि आज भी उसे जिला रही थी। इतना न मानना उसके साथ अन्याय करना हो जाता है ।

उस दिन सब मजदूरों की पुकार हुई मिल मालिक के सामने, प्रायः दो माह के बाद वह लौटा था और बाकी के हुए हिसाब को चुका रहा था, ओढ़नी से सिर का पसीना पोंछती हुई दलवीर सबके पीछे पहुँची ।

एक बड़े कमरे में आराम कुर्सी पर बैठा हुआ रणधीर बही–खातों को देख रहा था और मजदूरगण एक–एक कर अन्दर जाते फिर अपना हिसाब लेकर बाहर चल देते

सब से पीछे दलवीर पहुँची. किन्तु द्वार पर ही वह ठिठक रही. उसकी आँखों के सामने वह कौनसे विचित्र सत्य का नग्न रूप है ? नहीं-नहीं वह अपनी आँखों को प्रतारक नहीं कह सकती । आरामकुर्सी पर बैठा हुआ व्यक्ति उसी का पति है. हाँ, उसकी तीन मृत सन्तानों का पिता और रेश्मी वस्त्र पहने हुए, शर्बत का ग्लास हाथ में लिए वह जो नारी अंदर से निकलकर उसके पति की कुर्सी से टिक कर खड़ी हो गयी । वही, वही तो उसके अत्याचार-पीड़ित दिन की साथिन रानी है, वह एक ही तो कमरा था–जहाँ उस पर और रानी पर पाशविक अत्याचार किया गया था ।

रानी अस्फुट चीत्कार कर उठी । रणधीर ने आँखें उठा कर देखा ।

'तुम कहाँ दलवीर ?'...कह रही थी रानी ।

'और तू रानी ?'...तब दलवीर का अचेतन शरीर जमीन पर लेट रहा।

'क्या तुम इसे पहचानती हो रानी?'''दलवीर के मुँह पर पानी का छींटा मारता हुआ रणधीर पूछ रहा था।

'मैं ? नहीं-नहीं.'---रानी तब भी पूर्णरूप से सहम न सकी थी।

'नहीं लेकिन जरा पहले तुम इसे पुकार रही थीं न ?'

'वह मेरी भूल थी, मेरी सहेली भी ऐसी थी न!' बोली रानी इतना ही और तब सोच उठी---नहीं नहीं अपना परिचय देकर इस सुख के सपने को नष्ट-भ्रष्ट न करेगी। अभी उस दिन ही तो उसका विवाह हुआ है । कितनी आशा, आकांक्षा लेकर वह इस घर में आयी है, यदि नरपिशाचों ने उस पर अत्याचार किया था तो वह इसके लिए दोषी क्यों? वह तो अपनी इच्छा से उनके साथ नहीं गयी थी न. उसने सारी बातें पति से छिपा रखी थीं और छिपाकर रखेगी.

विस्मय से रणधीर ने अपनी नव-विवाहित-पत्नी की ओर देखा. जिस दृष्टि को सहन करना रानी के लिए असह्य था. वह एक प्रकार भागती हुई सी अन्दर चल दी ।

तब आँसू बहाती हुई रानी ने सारी कथा सरदार से कह दी. रानी और दलवीर पर अत्याचार की कहानी, मुन्नू के निधन की सब कथा !

दलवीर के जीवन की हँसी की अंतिम-ध्वनि तब एक उन्मद आँखों में परिवर्तित होकर हँस उठी. विकट बवंडर सी वह ध्वनि---पूछ रही थी पति से दलवीर---'तो तुम ने आज नयी और पुरानी पत्नी का त्याग किया? यही कह रहे थे न? हम दोनों तुम्हारे काम की नहीं?'---कहने लगी दलवीर रानी का हाथ थामे हुए---'परन्तु मैंने तुम्हारा उसी दिन त्याग कर दिया था । '

त्याग किया था? उसकी दलवीर ने उसका त्याग किया था? रणधीर का पौरुष जैसे मुरझा कर टूटने-सा लगा---हाँ, त्याग करने की, शक्ति देने का

अधिकार तो केवल पुरुष की जाति उसी को है न। नहीं? नहीं, वह तो खेलने की गुड़िया ठहरी !

उसकी इच्छा-अनिच्छा का मूल्य ही कब किसने आंका है? इसी बात को तो वह इतने दिनों तक समझता आया था ! फिर आज यह उद्धत नारी उसके मुख के सामने कौन से सत्य को बिखेर रही है? अबाक्—विस्मय से रणधीर ने कहा—'त्याग-त्याग न और मुझे!'

'हाँ उसी दिन त्याग किया था मैंने, जिस दिन सब कुछ जानते हुये भी अपनी सहधर्मिणी और अपने जिगर के खून, प्यारे बच्चे को उन लुटेरों के हाथ में छोड़कर अपनी जान लेकर भागे थे. पति, प्रिया, स्वामी और प्रभु के ऊँचे सिंहासन से उसी दिन तुम गिर चुके थे। एक ऐसे पति को पत्नी ने उसी दिन त्याग दिया था, समझे? चलो बहन, हम दोनों के लिए दुनिया में जगह की कमी न होगी.'

और तब न जाने क्यों रणधीर का पथरोध कर लिया—

'नहीं.'

'नहीं?'—दलवीर हँसी. अपनी इस जिंदगी में वह पुनः हँसी. यद्यपि इस हँसी की जाति ही निराली थी।

पदुमलाल बख्शी

चक्करदार चोरी

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

हिन्दी-साहित्य के प्रशान्त आलोचक।

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक। 'छायावाद' से लेकर प्रगतिवाद तक हिन्दी-साहित्य के एकनिष्ठ पुजारी, अध्येता और प्रेरणादायक।

सर्वमान्य, वयोवृद्ध कहानी लेखक; अनेक कथाकारों के निर्माता एवं पथ-निर्देशक। वर्त्तमान-युग के दार्शनिक-रसिक।

अँग्रेजी, संस्कृत, बँगला और हिन्दी-साहित्य के ज्ञाता एवँ पारखी।

आत्म-विज्ञापन से दूर, मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ की खैरागढ़ नाम की एक रमणीय रियासत (अब तहसील) में यह एकान्त पुजारी आज भी सरस्वती की साधना में तल्लीन है। सभा-मंच पर आने में हिचक, नहीं....भय लगता है। प्रशंसा के काँटों पर खिलना उसे नहीं सुहाता।

मँझोल कद। खुलता हुआ गेहुँआँ रंग, जो अवस्था के कारण धुँधला हो गया है। शरीर पर जैसे-तैसे पड़े हुए साधारण कपड़े। प्रशस्त ललाट। जीवन की गहराई लिये 'झील' के समान दो नयन। 'गहरि वाणी' का हलका स्वर। स्वभाव से 'गऊ'; मिज़ाज से दार्शनिक।

जीवन की हर छोटी सी घटना बख्शी जी की लेखनी का स्पर्श पाकर 'कहानी' बन जाती है। पारखी आँखें घटनाओं की धूल में से अपना हीरा खोज लेती हैं। बख्शी जी की कहानियाँ आधुनिक हिन्दी-साहित्य की अक्षय निधि हैं।

ऐसी ही अक्षय निधि से यह 'चक्करदार चोरी' आपके रँगे-हाथों में......

चक्करदार चोरी

उस दिन बड़ी गर्मी थी। कितने वर्ष पहिले की बात लिख रहा हूँ; फिर भी मुझे यह अच्छी तरह याद है कि उस दिन गर्मी थी। ग्रीष्म-ऋतुके आरम्भेमें गर्मी होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। तो भी मैं अन्य दिनोंको छोड़कर आज उसी एक दिनकी बता लिख रहा हूँ, क्योंकि उस दिन असिताने...।

पर कहानी आरम्भ करने से पहिले मुझे प्रस्तावनाके रूप में बहुत-कुछ कहना है। बात यह है कि यह बिल्कुल कहानी ही नहीं है। इसे यदि मैं चाहूँ, तो अपने जीवनकी एक सच्ची घटना कह सकताहूँ; पर इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें जो बातें हैं, वे सब सच हैं। सच पूछा जाय, तो न यहाँ कभी चक्करदार चोरी हुई और न यहाँ किसी बालिका ने मुझे अपने साथ लेकर उस चोरीका पता ही लगाया। फिर भी इस घटनाको मैं अपने जीवन की एक घटना समझता हूँ, क्योंकि बाह्य-जगत्की घटना न होने पर भी वह मेरे अन्तर्जगत्की घटना है। संसारमें जो घटनाएँ घटती हैं, वे ही एकमात्र सत्य नहीं है। मेरे लिए तो संसार की कोई घटना तभी सत्य होगी, जब उसका प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ेगा। यदि यह बात नहीं है, तो कैसी भी असाधारण घटना क्यों न हो, मेरे लिए उसका कुछ भी महत्व नहीं है। उसी की सत्यता के लिए मैं व्यग्र नहीं हूँगा। पर जो मेरे मन की बात है, उसे यदि मैं झूठ कहूँ, तो फिर सच किसे कहूँगा ?

मैं अब ५६ साल का हो गया हूँ। भिन्न-भिन्न स्थानों में भटक-फिरकर, भिन्न-भिन्न लोगों के साथ रहकर, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों को अतिक्रमण कर मैं अब अपने गाँव में मास्टर हो गया हूँ। स्कूल में मास्टर होने के कारण अब मुझे केवल बालकों और बालिकाओं के बीच ही रहना पड़ता है। यहां आकर मैं एक ऐसी स्थिति का अनुभव करने लगा हूँ, मानों अब मेरे जीवन की गति ही अवरुद्ध हो गई है मानो अब मुझे जीवन–पथ में अग्रसर ही नहीं होना है। स्कूल-मास्टर के जीवन में एक तो वैसे ही शांति रहती है, फिर खैरागढ़ एक ऐसी जगह है, जहाँ जीवन-संग्राम विकट

चक्करदार चोरी

जो बात यथार्थ जगत् में सम्भव नहीं, वह बात कल्पना जगत में बिल्कुल संभव है। इसीलिए मैंने अपने लिए एक कल्पना-जगत का निर्माण कर लिया है। उसमें मैं मोहन बनकर असिता का अनुचर हो गया हूँ। बाल्यकाल में मेरी जो भावनायें थीं, उन सभी को मोहन में प्रकटकर मैंने उसमें अपना अस्तित्व लीन कर दिया है। यह सच है कि मेरे बाल्यकाल में न कोई असिता हुई और न कोई प्रभा; पर एक बार मोहन बन जाने पर इनकी सृष्टि में मुझे जरा भी प्रयास न करना पड़ा। यह सब मैंने कैसे किया, इसका कारण यह है कि मैं उपन्यासों का एक प्रेमी पाठक रहा हूँ। अभी तक मैंने कितने ही उपान्यास पढ़ें हैं। जो उपन्यास मुझे अच्छे लगे, उनके पात्रों को मैंने अपना सहचर ही बना लिया। कथा का यथार्थ रस इसी में है कि हम उपान्यासों के जगत् में उपन्यास के पात्रों के साथ स्वयं यात्रा करते हैं। हिन्दी के आधुनिक साहित्य में अब कितने ही कलाकार हो रहे हैं। इन्होंने बड़े बड़े कल्पनापूर्ण उपान्यास लिखे हैं। बड़े-बड़े कला-विशारदों ने उन पर बड़ी–बड़ी विद्वत्तापूर्ण समालोचनाएँ भी लिखी हैं। उनमें कला का चाहे जितना चमत्कार हो; पर मुझको उनके जगत से विरक्ति हो गई है। मैं उनके साथ उसमें प्रविष्ट नहीं हो सका हूँ। इसी से कथा का यथार्थ रस मुझे तो उन कलाविशारदों की कृतियों में नहीं मिला है। वाजपेयी जी मुझे चाहे मध्यम श्रेणी का पाठक मानें या अधम श्रेणी का; पर यह बात सच है कि 'कंकाल' में मैंने भी कथा का रस नहीं पाया। वाजपेयी जी के कथन से यह प्रतीत होता है कि ऐसे उपन्यासों के लिए पाठकों की एक विशेष मानसिक स्थिति होनी चाहिए। मैं तो यह समझता हूँ कि भिन्न-भिन्न उपान्यासों के लिए भिन्न-भिन्न मानसिक स्थितियाँ होनी चाहिए। एक विशेष मानसिक स्थिति न रहने से न तो 'अलिफ-लैला' का रसोपभोग किया जा सकता है, न 'एलिस इन वण्डरलैण्ड' और 'वाटर बेबीज' आदि का यथार्थ रस लिया जा सकता है, और न 'कथासरित्सागर' और कादम्बरी से ही आनन्द की उपलब्धि हो सकती है। पो और कोनन डायल की कहानियों के लिए भी एक विशेष रुचि चाहिए। यही नहीं, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न उपन्यास विशेष रुचिकर होते हैं। पर यह भी ठीक है कि जो कथा का प्रेमी है, वह सभी स्थितियों और अवस्थाओं में अपने को रखकर कथा-रस का आस्वादन कर लेता है। उसे कष्ट तभी होता है, जब कथा कथा का पथ छोड़कर समाज-शास्त्र, विज्ञान या इतिहास का स्थान ग्रहण कर लेती है।

कुछ समय से विज्ञों की यह प्रवृत्ति हो गई है कि वे उपन्यास को मनोविज्ञान की तरह पढ़ने लगे हैं। मनोविज्ञान के तथ्यों के लिए उनका इतना अधिक

आग्रह हो गया है कि वे उन्ही में कला की सार्थकता समझते हैं । प्रसाद जी की कृतियों की जो आलोचनाएँ मैंने पढ़ीं हैं, उनमें ज्ञान की इतनी गुरुता है कि मैं उसके भार से दब जाता हूँ । प्रसाद जी की रचनाएँ मैंने भी पढ़ी हैं । पर पहले मैं उन कथाओं और रचनाओं को निःशंक और निर्भर होकर पढ़ जाता था । अब यह बात नहीं है । अब तो उन्हें पढ़ने का साहस ही नहीं होता । मुझे अब पग-पग पर संदेह होता है । मुझे अब ऐसा प्रतीत होता है कि शेक्सपियर के नाटकों की तरह प्रसादजी की रचनाएँ भी प्रसाद जी को पीछे हटाकर बहुत आगे बढ़ गई हैं। अन्य कलाकारों के संबंध में भी ऐसे ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पढ़कर मैं तो विस्मय-मुग्ध हो जाता हूँ । स्वयं कहानी का लेखक हूँ नहीं; काम चलाने के लिए अंग्रेजी कहानियों के भाव लेकर मैंने अपने समय में दस-पांच कहानियां अवश्य लिख डाली हैं । इसीलिए मैं यह तो नहीं कह सकता कि कथालेखक अपनी कथा में मनोविज्ञान का विश्लेषण करते हैं, या अपने मन की बातें लिखते हैं; पर इसमें संदेह नहीं कि आजकल भावों की जटिलता में पड़कर कितने ही कलाकर अपने यथार्थ उद्देश्य को भूल जाते हैं । अहंवृत्ति किसमें नहीं है ? कौन अपनी दृष्टि से संसार को नहीं देखता ? किसे अपने मनोभावों की शुचिता और अन्य के मनोभावों के कालुष्य पर संदेह होता है ? पर मनुष्यों की इस अहंवृत्ति में सत्य का स्वरूप कहाँ है, यही देखना हमारा ध्येय होना चाहिए । विकृत अथवा विक्षिप्त मानसिक अवस्था का वर्णन ही कथाकार का यदि उद्देश्य है, तो बात दूसरी है । पर इसमें संदेह नहीं कि अब आलोचकों की-सी विशुद्ध दृष्टि न रखकर उपन्यास का रसोपभोग करना अवश्य कठिन है ।

अपने समान उपन्यास-प्रेमी के लिए मैं जिस गुण को अनिवार्य समझता हूँ, वह है उसकी कल्पनाशीलता । उपन्यास-लेखकों की कल्पना में उनकी सृजन-शक्ति रहती है । पाठकों की कल्पना में उसे ग्रहण करने की शक्ति चाहिए। लेखक एक के बाद एक कल्पित चित्र उपस्थित करता जाता है और पाठक उन्हें अपनी कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष देखता जाता है । उसे कौतूहल होता है, विस्मय होता है, और वह उसी में लीन हो जाता है । चित्रों की समाप्ति पर भी उसका मोह भंग नहीं होता । वह लेखक के कल्पित संसार से इतना परिचित हो जाता है, मानो उसनें सचमुच उस जगत की यात्रा कर ली हो । जो लेखक मेरे हृदयमें कल्पना का यह मोह-जगत निर्मित नहीं कर सकते, उनमें मेरी समझ के अनुसार कथा की कला नहीं है, अन्य चाहे जो गुण हों । इसी से प्रेमचंद जी की कहानियों में मेरे लिए जो आकर्षण है, वह प्रसाद जी की कहानियों
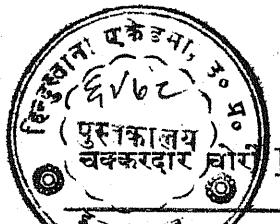
में नहीं है । इतनी लम्बी प्रस्तावना लिखने का कारण पाठकों को यह समझाना है कि मैं क्यों मोहन बना ।

हां, उस दिन बड़ी गर्मी थी । मैं कमरे के एक कोने में बैठा था, प्रभा दूसरे कोने में बैठी थी और असिता तीसरे कोने में । सारे घर में निस्तब्धता थी । सहसा वह निस्तब्धता भंग हुई---'यहां कुछ भी नहीं होता । यहां कुछ भी नहीं है ।' यह कहकर असिता ने एक दीर्घ निःश्वास लिया और फिर गहमरी जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'चक्करदार चोरी' को, जिसे वह ९ बजे से पढ़ रही थी, मेज पर फेंक दिया । असिता की इस बात ने मुझे चौंका दिया । मैं तब हनुमान टेकरी पर तिलिस्म की बात सोच रहा था । मैं असिता की बात का कुछ भी उत्तर न दे सका । प्रभा भी असिता की यह नैराश्य-विरक्ति-असन्तोषपूर्ण उक्ति सुनकर भूगोल पर अपनी दृष्टि स्थिर न रख सकी । उसनें भी किताब बन्दकर कहा---"हां, दीदी, सचमुच यह स्थान बिलकुल अच्छा नहीं है । न तो सिनेमा.......... ।'

प्रभा की बात काटकर असिता ने कहा--"सिनेमा न हो, तो न सही । सिनेमा देखना ही चाहूँगी, तो अभी मोटर में बैठकर डोंगरगढ़ और राजनादगांव जा सकती हूँ । पर यहां तो कोई घटना ही नहीं होती । सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक वही एक तरह का जीवन रहता है । वही स्कूल, वही मास्टर, वही बकवास, वही सब कुछ । मैं तो बिलकुल ऊब गई हूँ । कहीं भी जाओ, एक वही बात सुनो । यह स्थान ऐसा निश्चेष्ट, निष्क्रिय और निष्प्राण है कि कभी कोई बड़ी चोरी भी तो नहीं होती ।"

'चोरी !' ---प्रभा ने चकित होकर कहा---'चोरी डकैती से क्या होगा, दीदी ? और वैसे चोरी तो रोज ही होती है ।'

असिता ने विरक्ति से कहा---'तुम कुछ नहीं समझतीं । मैं लोटा-थारी या कटोरे की चोरी की बात नहीं कह रही हूँ । मैं तो चाहती हूँ कि ऐसी चोरी हो, जिससे बड़े-बड़े जासूस चक्कर में पड़ जायें । अभी मैंने एक ऐसी ही चक्करदार चोरी की कथा पढ़ी है । सवा लाख की चक्करदार चोरी हुई थी और उसका पता लगाया एक जासूस ने । युवावस्था के उन्माद ने, प्रेम की एक भूल ने, सभी लोगों से अलक्षित कैसा भयानक रूप धारण कर लिया और अन्त में वह किस प्रकार एक भयानक काण्ड में परणित हो गया ! कितनी रहस्यमय है यह कथा । एक के बाद एक आश्चर्यजनक घटनाएँ होती जाती हैं, और अन्त में चोर पकड़ा जाता है । यहां तो किसी ने ताला तोड़ा कि पकड़

लिया गया, और उसे छः महीने की सजा हो गई । न कोई आश्चर्यजनक घटना होती है और न कोई रहस्यमय भेद ही खुलता है । अगर कोई ऐसी ही विचित्र चोरी होती, तो........'कहते-कहते असिता रुक गई ।

'तो क्या दीदी ?'––प्रभा ने पूछा––'तो क्या होता ?'

'तो मैं उसका पता लगाती ।'––असिता ने कहा ।

प्रभा ने असिता की यह बात सुन बड़े आश्चर्य से कहा––'तुम कैसे पता लगा लेतीं ? तुम तो अभी छोटी हो !'

असिता ने कहा––'मैं १४ साल की हूँ, तुमसे दो वर्ष बड़ी हूँ । छोटी तो तुम हो, तभी तो कहती हो कि तुम कुछ समझती नहीं । मैंने इतने दिनों तक क्या योंही गोविन्दराम की कथाएँ पढ़ी हैं । मैं सब समझ गई हूँ । मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि गोविन्दराम किस तरह अपराधियों को ढूँढ़ निकालते थे । क्यों मोहन, तुम क्या सोचते हो ?

मोहन अर्थात् मैं असिता से अवस्था में बड़ा होने पर भी उसका अनुचर था । मुझे दुख यही था कि वह तिलिस्म और ऐयारों के अस्तित्व पर विश्वास ही नहीं करती थी, बल्कि उन्हें कल्पना-जगत् की मिथ्या बातें भी समझती थी । उसे तो यथार्थजगत् की यथार्थ बातों से प्रेम था । मैं सोचता ही रह जाता था कि वह कमला बन किसी मायारानी की सभा में जाती और तब मैं भी चण्डूल बनकर वहाँ पहुँचता । पर ऐयारों के इस स्वांग से उसे चिढ़ थी । वह तो गोविन्दराम की अनुगामिनी थी । वह संसार के रहस्यागार को तर्क के आलोक से स्पष्ट कर देना चाहती थी । वह वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा मनुष्य-जीवन को छिन्न-भिन्न कर उसका यथार्थ रूप देखनाचाहती थी । वह मनोविज्ञान को समझकर संसार को अपराधियों से हीन करना चाहती थी । घर बैठे केवल देखकर ही वह अपनी बुद्धि द्वारा अन्तर्जगत की सभी रहस्यमयी बातों का पता लगा लेना चाहती थी । इसीलिए मैंने कहा––'तुम ठीक कहती हो ।"

'सुनो' असिता ने गंभीर स्वर में कहा––'चोर अपने चेहरे को दाढ़ी और मूँछों से छिपाये रखते हैं । वे चश्मा भी लगाते हैं ।. वे लोग ऐसा क्यों करते हैं, क्या तुम बतला सकती हो ?'

'नहीं दीदी, मैं तो नहीं जानती ।'––प्रभा ने सिर हिलाकर कहा ।

तब असिता कहने लगी––'बात यह है कि दाढ़ी-मूँछ मुंड़ा लेने और चश्मा निकाल देने पर उनका चेहरा ऐसा बदल जाता है कि अच्छे-अच्छे लोग भी उन्हें नहीं पहचान पाते ।'

प्रभा प्रतिवाद नहीं कर सकी । वह जानती थी कि असिता की बुद्धि तीक्ष्ण है । दसवीं क्लास में वही फर्स्ट है । इसलिए असिता जो कुछ कह देती वह वह चुपचाप स्वीकार कर लेती थी । जब दोनों इसी चिंता में मग्न थीं कि कब कोई ऐसी घटना हो उसी समय वल्लभ दौड़ कर आया और कहने लगा–'दीदी, दीदी, तुमने कुछ बात सुनी है ? कल रात को एक बड़ी विलक्षण घटना हो गई, बड़ी ही विलक्षण !'

असिता ने कहा––'हाँ, समझ गई । तुमको मास्टर ने भूगोल में पास कर दिया होगा ।'

वल्लभ ने कहा–'वाह, यह भी कोई विलक्षण बात है ? मैं क्या भूगोल में पास नहीं हो सकता था ? अच्छा, तुम बताओ छोटी दीदी, क्या बात हुई है ?'

प्रभा ने कहा––'अरूप और अनूप में लड़ाई हुई होगी ।'

वल्लभ ने उत्तर दिया––' छिः, ऐसा झगड़ा तो दोनों में रोज ही होता है । अब तुम खूब सोचकर बताओ, दीदी ! सचमुच बड़ी विचित्र बात है ।'

असिता ने कहा––' कोई चक्करदार चोरी.........'

वल्लभ ने ताली पीटकर कहा––'हाँ, ठीक जान लिया तुमने, दीदी ! सचमुच चक्करदार चोरी ही हुई है । कप्तान साहब घबराए हुए हैं । किसी ने राजा साहब के कोट के सोने के बटन चुरा लिये हैं । महल से चोरी हुई है । १२ बटन थे और एक सोने की अँगूठी । न ताला टूटा, न चाबी गायब हुई और चोरी हो गई !'

असिता ने सुनकर कहा––हाँ, चोरी तो ऐसी ही होती है । "चक्करदार चोरी" में भी ऐसी ही चोरी हुई है । खजांची पर सब शक करते होंगे ।'

वल्लभ ने विस्मित होकर कहा––'तुमने कैसे जान लिया, दीदी ? सब हरी बाबू पर शक कर रहे हैं । वह बेचारा बड़ा घबरा गया है ।'

असिता ने निश्चयात्मक स्वर से कहा---'पर वह चोर नहीं है, वह कभी चोर नहीं हो सकता ।'

वल्लभ ने बड़ी प्रसन्नता से कहा---'सचमुच वह चोर नहीं है । पुलिस वाले उसे व्यर्थ हैरान कर रहे हैं । उसका लड़का बड़ा अच्छा है । वह मेरे साथ पढ़ता है । उसको बुला लाऊँ दीदी ?'

असिता ने कहा---'अभी नहीं । अभी मैं इस घटना को अच्छी तरह सोच लूँ । इस चोरी में प्रेम का कैसा रहस्य-भेद होगा ? अपनी किस प्रियतमा की किस किस इच्छा की पूर्ति के लिए किस चोर ने यह साहसपूर्ण कार्य किया है ? अथवा किस लोभ या प्रतिहिंसा ने कपट का यह जाल रचा है ? ये सभी बातें विचारणीय हैं ।'

असिता चोरी की चिंता में डूब गई । मैं भी उसी की चिंता में लीन हो गया । प्रभा चुपचाप बैठी अपने भूगोल के चित्र देखने लगी और वल्लभ भी वहीं कुत्ते से खेलने लगा । उसी समय दो आदमी आकर सड़क पर खड़े हुए । एक के सिर पर पगड़ी थी । वह काफी ऊँचा था । बड़ी-बड़ी मूँछें और दाढ़ी थी । आँखों पर चश्मा भी था । वह धीरे-धीरे दूसरे आदमी से कुछ बातें करने लगा । असिता को कुछ संदेह-सा हुआ । वह चुपचाप आड़ में जाकर उनकी बातें सुनने लगी । वह आदमी कह रहा था--'आज रात को १०बजे उसी शिव-मन्दिर में मैं आऊँगा। बटन का हाल तो तुमने सुना होगा। पुलिस भी ताक में है, इसलिए हम लोग चार ही वहाँ रहेंगे। दूसरों का काम नहीं है ।'

यह कहकर वह चला गया । दूसरा आदमी भी चला गया । असिता के चेहरे पर प्रसन्नता की झलक आ गई । उसने तुरन्त ही पुकारा---'प्रभा, मोहन, दोनों आओ ।' हम दोनों जाकर असिता के सामने खड़े हुए । असिता ने कहा---'मोहन, तुम्हारे पास टार्च है ?"

मैंने कहा---'हां, मैंने उसे अपने ऐयारी के बटुए में रखा है ।'

मेरी बात सुनकर असिता ने कुछ विरक्त होकर कहा---'मुझे तुम्हारी ऐयारी से कोई मतलब नहीं है । अच्छा, अब यह बताओ कि तुम्हारे पास दो सीढियाँ हैं ?

मैंने कुछ खिन्न होकर कहा---'हां, हैं तो ।'

असिता ने कहा---'सुनो, मैंने चोरों का पता लगा लिया है । आज हम तीनों रात को निकलेंगे । दो टार्च रखेंगे और सीटियाँ ।'

प्रभा ने कहा---'कितने बजे रात को हम निकलेंगे ? माँ जाने भी देंगी ?'

असिता ने कहा---'मां को कोई बात मालूम नहीं होनी चाहिए। वल्लभ भी अभी न जानने पाये । हम लोग सब के सो जाने पर रात को चुपचाप यहीं एकत्र होंगे और इसी रास्ते से चलेंगे ।'

हम सबने यह निश्चय किया ।

रात को निर्धारित समय पर असिता और प्रभा मुझको लेकर निकलीं । अँधेरी रात थी । मेरा हृदय धड़क रहा था; पर असिता निर्भय जा रही थी । कुछ ही देर में शिव-मन्दिर आ गया । असिता ने प्रभा और मुझको एक कोने में छिपाकर कहा---मैं जब सीटी बजाऊँ, तब तुम भी सीटी बजाना । यह कहकर वह मन्दिर के पास पहुँच गयी । वहाँ उसने खिड़की में से देखा कि एक कमरे में चार आदमी बैठे कुछ कर रहे हैं। रुपयों की खनखनाहट भी उसे सुनाई दी । तुरन्त ही नीचे आकर उसनें सीटी बजाई । उसके सीटी बजाते ही मैंने भी दूसरी ओर से सीटी बजा दी । इतने में तुरन्त ही चार आदमी कूदकर भागे । असिता ने उन पर टार्च से रोशनी फेंकी । तब तो वे और तेजी से भागने लगे ।

इसके बाद असिता प्रभा और मुझको लेकर मन्दिर के भीतर घुसी । वहाँ हमने देखा कि सोलह कौड़ियाँ पड़ी हुई हैं और उनमें चार चित्त हैं । हम लोगों ने चार की आवाज भी सुनी थी । इन कौड़ियों का रहस्य मेरी समझ में न आया । मैं असिता की ओर देखने लगा । वह भी सोचने लगी कि इसका क्या मतलब है ? सहसा उसकी दृष्टि मन्दिर की दीवार पर गई । उसमें कई छेद बने हुए थे । असिता ने गिना आठ छेद थे । दूसरी दीवार पर भी आठ छेद थे । कौड़ियों का गूढ़ अर्थ असिता ने समझ लिया । तब उसनेचौथे छेद में टार्च की मदद से देखा । कुछ दबा-सा दिखाई पड़ा । उसनें ईंटों को हटाकर देखा तो उसमें चमड़े का एक बैग दिखाई पड़ा । उसे खोलकर उसने देखा कि उसी के भीतर सोने के बारह बटन थे और अँगूठी थी । मैं तो चकित होकर असिता की ओर देखने लगा ।

फिर हम तीनों चुपचाप घर लौट आये ।

सत्य अनन्त है; पर हमारा ज्ञान तो परिमित है । हम उससे जो पाते हैं, उसे सत्य न समझें, तो और किसे समझें ? संसार में प्रेम की अनन्त घटनाएँ होती हैं । जीवन में अनेक संयोगान्त और वियोगान्त लीलाएँ होती हैं । यह तो संयोग की बात है कि किसी विशेष नायक के जीवन में किसी विशेष समय में विशेष सुख-दुख की परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए कोई विशेष नायिका आ जाती है । 'श्रीकान्त' ने 'प्यारी' में जो सत्य पाया अथवा 'शेखर' ने जो 'शशि' में सत्य पाया, वही उनके लिए सत्य है । हमने भी कौड़ियों द्वारा संयोग से चोरी का पता लगा लिया, उसकी सत्यता में हमें संदेह नहीं था । दूसरे दिन हम लोगों ने वल्लभ को सब बातें बतला दीं। विजय-गर्व से उल्लसित होकर हम सब कप्तान साहब की राह देखने लगे । कुछ देर बाद कप्तान साहब असिता के घर वकील साहब से बात करने आये । चोरी की भी चर्चा हुई । कप्तान साहब ने कहा---'कुछ पता नहीं चला । हम लोगों ने बड़ी कोशिश की ।' असिता, प्रभा और वल्लभ तीनों वहीं खड़े सुन रहे थे । वल्लभ ने कहा---'कप्तान साहब, हम लोगों ने पता लगा लिया है । ये हैं आपके बटन और अँगूठी ।'

सब देखकर दंग रह गए । बहुत आश्वासन देने पर वल्लभ ने सारी घटना कह सुनाई । सब हँसने लगे ।

पर अब असिता को जासूसी उपन्यास पढ़ने को नहीं दिये जाते हैं । अब वह शरद् बाबू और बंकिम बाबू के ही उपन्यास पढ़ा करती है। अब मुझे भी यह आशा नहीं है कि वह कभी कमलिनी या कमला हो सकेगी---आधुनिक उपन्यासों की रहस्यमयी, प्रेमोन्मादिनी, भावुकता से युक्त नायिका वह भले ही हो जाय । पर उसी के साथ मेरी ऐयारी और बटुये का भी अन्त हो गया । प्रेम की रश्मि से अनुरंजित इस नव-साहित्य में ऐयारों के साहसपूर्ण नैपुण्य के लिए स्थान नहीं है। उसमें 'वीरेन्द्र' का शौर्य और 'इन्द्रजीत' का पराक्रम दोनों व्यर्थ है । अब तो सुनीता और हरिप्रसन्न तथा शशि और शेखर का युग है । स्त्री और पुरुष की समस्या ने प्रेम और क्रान्ति की वह चक्कर-दार पहेली बना दी है कि उसमें मैं पड़ना ही नहीं चाहता । मेरे पास यथेष्ट दुःख और चिन्तायें हैं । उपन्यास-लेखकों के कल्पित पात्रों के कल्पित दुःख और कष्ट में पड़कर कौन अपनी वेदना को बढ़ाना चाहेगा ?

जहूरबख्श

विजय-मंत्र

जहूरबख्श

वर्त्तमान हिन्दी कथा-साहित्य के मँजे हुए, ख्यातिप्राप्त कथाकार।

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के उन्नयन में मुसलमान कलाकारों ने हिन्दू कलाकारों की भाँति ही योग दिया है। इसी परम्परा की रक्षा करने वाले कलाकारों में जहूरबख्श का नाम हम गर्व से ले सकते हैं।

जहूरबख्श मुसलमान होते हुए भी धोती और लम्बा कोट पहिनते हैं; कुछ स्थूल शरीर; बड़ी-बड़ी मूछें और गेहुआँ रंग देखने पर ऐसा लगता है मानो संघर्षों की भट्टी में निरन्तर जलते रहने से रंग और भी साँवला पड़ गया है।

साहित्य के साथ-साथ चित्रकारी से अनुराग; मोती से सुडौल अक्षर। स्मित-हास्य के साथ नफ़ीस बातचीत, जैसे आत्मीयता का सागर उमड़ पड़ा

जहूरबख्श ने आज तक हमारे देश की पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं। देश के प्रतिनिधि कथाकारों में जहूरबख्श का आदरणीय स्थान है। जहूरबख्श की कलम में जादू है। करुण चित्रों का आकलन आपकी विशेषता है। वातावरण उत्पन्न करने की दक्षता, घरेलू समीपता के साथ अभिव्यक्तिकरण का गुण तथा रसवन्ती भाषा पर अधिकार, ये ऐसे गुण हैं कि जहूरबख्श की कहानी पाठक के हृदय को मंत्रमुग्ध कर देती है।

विजय—मन्त्र

एक एक कर सभी निमन्त्रित व्यक्ति आ पहुँचे। जब सबके सामने विविध व्यंजन परोसे जा चुके तो हजरत मुहम्मद साहब ने गृहस्वामी अकवासे कहा—भाई, एक बार तो अल्लाह का नाम लो। वह कितना मेहरबान है देखो, उसने हम लोगों के लिए कैसी कैसी जायकेदार चीजें पैदा की हैं। अकवा मक्का नगर का एक सम्भ्रान्त व्यक्ति था। पिछले दिनों उसे व्यापार में लाभ स्वरूप एक अच्छी धनराशि प्राप्त हुई थी। उल्लास के इसी उभार में उसने यह भोज दिया था और मक्का नगर के सभी प्रमुख व्यक्तियों को निमन्त्रित किया था। कुरैश जातिमें हजरत मुहम्मद साहब का वंश अत्यन्त प्रतिष्ठित माना जाता था इसलिये अकवा ने उनको भी आग्रह—पूर्वक बुलाया था और वह सहर्ष अपने ही नातेदारों के साथ निमीन्त्रणम पधारे थे। उनकी बात सुनते ही उपस्थित जनों पर सन्नाटे ने जादू की लकड़ी घुमा दी। सब चुपचाप एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। अकवा पर मानों बिजली गिर पड़ी। वह आखें फाड़ फाड़कर हजरत की ओर देखता रह गया।

हजरत के ओठ मुसकिरा उठे और कण्ठ से मानो संगीत फूट निकला—क्या सोच रहे अकवा भाई! अल्लाह का नाम लेना कोई गुनाह थोड़े ही है। जिसने हमें सुख पहुँचाने के लिये यह दुनिया तरह तरह की नियामतों से भर दी है, राह दिखला-के लिये सूरज और चाँद जैसे बेमिसाल चिराग अता किये हैं, उसका नाम लेनेसे बढ़-कर सबाब और क्या हो सकता है? मेरे प्यारे, लो, एक बार तो दिल खोलकर अल्लाह का नाम लो ताकि हम लोग खाना शुरू कर दें।

उनकी इस वाणी में शायद साक्षात् परमात्मा ही बोल उठा था। अकवा आत्मविस्मृत-सा हो गया। हजरत के बोल समाप्त होते होते उसने पुकार लगायी—आप दुरुस्त फरमाते हैं। अच्छा तो अल्लाह के नामपर शुरू कीजिए।

अकवाने कहने को तो ये शब्द कह दिये परन्तु इसके बाद ही वह अपने अन्तर में उठनेवाली ग्लानि में खो गया। पश्चाताप के झंझानिल ने उसे एकदम झकोर डाला। बेचारा हतप्रभ होकर एक ओर जा बैठा, मानो किसी ने उसकी चलने फिरने की शक्ति भी हर ली। उसके चेहरेपर पड़ी हुई गहरी उदास छायाने स्पष्ट कर दिया कि वह निमन्त्रणजन्य उल्लासकी हार्दिक वेदना के रूपमें परिवर्तित कर चुका है। भोजन करनेवाले अधिकांश जनों का भी बहुत कुछ ऐसा ही हाल हुआ। वह इस प्रकार मुँह चला रहे थे, जैसे उनके सामने रखे हुए भोज्य पदार्थ विषमिश्रित हैं अखाद्य हैं।

यह समाचार मक्कामें हवा के समान् घर घर फैल गया और लोग अकवाकी आलोचना करने लगे। किसीने कहा—उसकी अक्लपर पत्थर पड़ गये हैं। किसी ने कहा—कम्बख्त निरा बुद्धू है। किसीने कहा— बुद्धूके भरोसे न रहना, अव्वल नम्बर का बना हुआ है। मुहम्मद का शागिर्द हो गया है। किसी ने कहा— दगाबाज ! मुस्लिम कहीं का। किसी ने कहा—अजी नहीं, गलत है तुम्हारा खयाल। गरीब को क्यों जबर्दस्ती गुनहगार ठहराते हो। मुहम्मद तो जादूगर है, जादूगर ! जो उसकी बातें सुनता है, वही आपा खो बैठता है। फिर बेचारा अकवा क्या करता ! आखिर कमजोर इन्सा। ही तो ठहरा।

स लोकनिन्दा के सामने अकवा को सर उठाना भी मुश्किल हो गया। जहां जाता, कड़वी तीखी बातें सुनता, फब्तियों का शिकार बनता। आखिर उसने घर से बाहर निकलना बन्द कर दिया।

उस समय अबी घर पर नहीं था। व्यापार के लिए बाहर गया था। वह अकवा का बड़ा भाई था। स्वभाव का अत्यन्त उग्र और क्रोधी। जरा जरा में आपेसे बाहर हो उठता और घर भर को सर पर उठा लेता। गनीमत इतनी ही थी कि यात्रा की ओर उसकी विशेष रुचि थी। इसीलिए वह महीनों बाहर पड़ा रहता और कुछ न कुछ कमाकर ही लौटता था। उसकी अनुपस्थिति में अकवा घरका काम सँभालता था और लोग चैन की सांस लेते थे।

अकवा न तो निरुद्योगी था और न आलसी। कमाऊ-पूत वह भी था, परन्तु अबी को बहुत मानता था। उसे देखते ही इस प्रकार दब जाता था, जिस प्रकार बाजके सामने गौरैया। इसीलिए अबीकी और भी बन पड़ी थी और वह मौके बे मौके घर

भर पर रोब गांठता रहता था उसके सामने चूँ भी कर सकता—किसी की इतनी मजाल न थी।

जब अबी लौटा तो घर भर को मानों साँप सूँघ गया। अकवा सिमटकर एक ओर जा बैठा। उसमें इतना भी साहस न रहा कि अबी से नजर तो मिला लेता। अबी भरा हुआ था, अकवा को देखते ही गरजकर बरस पड़ा—क्यों बे, यह तूने क्या किया? मेरी गैरहाजिरी में खानदान के उजले नाम पर कालिख पोत डाली—तेरी इतनी हिम्मत!

अकवा क्या उत्तर देता। सर नीचा किये चुपचाप खड़ा रहा।

अबी की आँखोंमें खून उतर आया। वह फिर उसी तरह गरजकर बोला—अबे, चुपचाप क्यों बैठा है? मेरे सवाल का जवाब क्यों नहीं देता?

बेचारा अकवा कहता तो क्या कहता? मुँह मानो किसी ने कील दिया था वह उसी तरह भूमि में नेत्र गड़ाये रहा। सर तक ऊपर न उठा सका।

अबी मारे क्रोध के पागल हो उठा। उसने पैर से भूमि पर एक ठोकर मारी और दांत पीसकर कहा—अकवा, चुप्पी लगाने से काम न चलेगा। तुझे मेरे सवाल का जवाब देना पड़ेगा; नहीं तो मैं अपनी और तेरी जान एक कर दूँगा। समझा?

अब जाकर अकवाका मुँह खुला। उसने जरा सर उठाया और धीरे से उत्तर दिया—ज्यादा शर्मिन्दा न कीजिये। इनसान से गलती हो ही जाती है। मैं माफी चाहता हूँ।

बदमाश, दागाबाज! यह क्यों नही कहता कि तू उस पाखण्डी जादूगर का शार्गिद हो गया है।

नहीं भाई साहब, यह बात हरगिज नहीं है। कसम ले लीजिए। मैंने सोचा' कहीं ऐसा न हो कि कुछ मेहमान बिना खाना खाये वापिस चले जायं; महज इसीलिए मुझसे अपने अकीदे के खिलाफ यह जरा सी गलती हो गयी।

जरा सी गलती! यह तूने जरा सी गलती की है? बेगैरत कहीं का! अगर थोड़े से मेहमान बिना खाना खाये चले जाते तो तेरे सर पर कौन सी बिजली गिर पड़ती। यह बदनामी तो न होती। कुछ पता भी है कि इस गलती के लिए मक्कावाले

ही नहीं, बाहर वाले भी तेरे नाम पर किस तरह थूक रहे हैं ! हाय हाय अकवा, तूने मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक भी न रखा !

यह कहते कहते अबी का गला भर आया । वह बैठ कर आंसू बहाने लगा । अकवाने उसके पैर पकड़ लिये और कहा—भाई साहब मैं खुद इस बदनामी से घुला जा रहा हूँ । घर से बाहर निकलने तक का नाम नहीं लेता । चुपचाप घर में पड़े-पड़े वक्त गुजार देता हूँ । दिन रात इसी खयाल में गर्क रहता हूँ कि कालिख धुल भी सकेगी या नहीं ? मगर क्या करूँ कोई तरकीब ही नजर नहीं आती ।

अबी ने तपाक से उत्तर दिया—तरकीब ? तरकीब तो जरा सी है—बहुत आसान है । मेरा कहना मान । एक टोकरी मैला ले जा और उस मक्कार के सर पर दे मार । फौरन यह कालिख धुल जायगी । जो सुनेगा, यही वाहवाह कर उठेगा ।

अकवापर मानो तुषारपात हो गया । उसने घबराकर कहा—यह क्या फरमाते हैं आप ! भला उन्होंने ऐसा कौन सा कसूर किया है ? अगर मैं उनके सर पर मैला फेंकने जाऊँगा, तो क्या जिन्दा वापस आ सकूँगा ?

अबी दहाड़कर बोला—अब कही तूने अपने दिल की बात ! यह तो मैं पहले ही से जानता था । मगर अकवा, यह याद रख, दुनियां में ऐसा कोई नहीं है, जो मुझे बुद्धू बना सके । अगर तुझसे इतना भी नहीं हो सकता, तो अभी मेरे मकान से बाहर हो जा । कसम है, जो मैं ताजीस्त कभी तेरा मुंह देखूँ ।

सन्ध्या का झुटपुटा हो चुका था । हजरत एकान्त में मगरिब की नमाज पढ़ रहे थे । उस समय उनके अनुयायी जनों की संख्या इतनी अल्प थी कि उंगलियोंपर गिनी जा सकती थीं । इसलिए उनको शत्रुओं भय से बहुधा एकान्त में अकेले ही ईश्वरोपासना करनी पड़ती थी । आज भी वह अकेले थे । अभी नमाज समाप्त भी न करने पाये थे कि अकवा दबे पैरों वहाँ आ पहुँचा और बड़ी फुर्ती से उसके सर पर मैला फेंककर भाग निकला । परन्तु वह प्रार्थना के आनन्द में तल्लीन रहे उन्होंने अकवा के दुष्कृत्य का कोई प्रतिकार नहीं किया ।

इतने में सामने से हजरत अली आ पहुँचे । वह हजरत मुहम्मद साहब के परम अनुचर थे । वीर तो ऐसे थे कि उनकी हुंकारमात्र से शत्रुओं के पित्ते पानी हो जाते थे । उनको देखते ही अकवा और भी वेग से भागा । अली समझ गये कि अवश्य दाल

म कुछ काला है। बस, उन्होंने एक ही सपाटे में उसे धर दबाया और हजरत के सामने पेश कर दिया ।

प्रार्थना से निवृत्त होते ही हजरत ने शरीर शुद्ध किया और वस्त्र बदले । फिर थर थर कांपते हुए अकवा पर एक दृष्टि डाली और मुसकिराकर अली से पूछा—स गरीब को क्यों पकड़ लाये भाई ?

अली सन्नाटे में आ गये । हजरत की ओर विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखते देखते बोले—इसने आपके जिस्म पर मैला फेंका है । क्या मेरा यह खयाल गलत है ?

खयाल तो गलत नहीं है । मगर तुम इसे यहां पकड़ं किस मतलब से लाये ?
सजा देने के लिए ।

क्या फायदा ! छोड़ दो ।

एक काफिर, एक बुतपरस्त आपकी मोती - सी आब उतार ले और बिना मजा चखे बच निकले—यह गैर मुमकिन है । इजाजत दीजिये, मैं अभी इसकी बोटी बोटी काट कर फेंक दूं । मक्का वालों को भी पता चल जायगा कि मुहम्मद साहब को टेढ़ी निगाह से ताकना हँसी-खेल नहीं है ।

तौबा ! इतना जुल्म ! नहीं भाई, इसने इतना संगीन जुर्म नहीं किया है । मेहरबानी करो, इसे छोड़ दो, माफी दे दो, । माफी का दरजा सजा से बहुत ऊपर है ।

ऐसे कमीने को माफी देना अपनी कमजोरी जाहिर करना है।

कहते क्या हो अली ! कमजोर इन्सान माफी बख्शना क्या जाने । माफी बख्शना तो वही जानता है, जिसके दिल में—जिसके बाजू में कूवत होती है। फिर मजहब के मामले में तलवार वह काम नहीं कर सकती जो मुहब्बत के, माफी के दो लफ्ज कर दिखाते हैं । मैं कहता हूँ इसे अल्लाह के नाम पर माफ कर दो, छोड़ दो । इसके दिल में अल्लाह का नाम घर कर चुका है । तुम्हें याद होगा, इसने उस दिन मेरे कहने से अल्लाह का नाम लिया था ।

अब अली क्या करते ? उन्होंने अकवा को छोड़ दिया । हजरत ने उससे कहा—अकवा, मेरे भाई, आजाद हो, जहां तबीयत चाहे जा सकते हो ।

अकवा की आँखों से झर झर आंसू बहने लगे । वह हजरत के चरणों पर गिर पड़ा और रुँधे हुए गले से बोला---अब कहां जाऊँ हुजूर । इजाजत दीजिए कि ताजीस्त ये कदम-मुबारक चूमता रहूँ ।

अली की आंखों में भी आंसू भर आए । उन्होंने भावावेश में उन्मत्त होकर कहा---आज आपकी तबीयत की गहराई का पता चला । आपने मुझे फतह का जो गुर बतलाया है, जो मंत्र दिया है, वह हमेशा मेरी जिन्दगी का एक जुज बन कर रहेगा ।

श्री वनमाली

स्वामी

वनमाली

'वनमाली' का पूरा नाम श्री जगन्नाथ प्रसाद चौबे है ।

'वनमाली' का साहित्यिक रूप उस झरने के समान है , जिसका स्वर सुनकर ही झरने का अस्तित्व ज्ञात होता है । गहन वनखण्ड की हरियाली में छिपा झरना गिनती ही की आंखें देख पाती हैं ।

एक आलोचक ने वनमाली की कथा-कला के परिचय में लिखा है, ' वनमाली जी में आख्यायिका -कला की अपूर्व कुशलता है । मध्यप्रांत में कदाचित वही एक ऐसे लेखक हैं जो एकमात्र आख्यायिकाएं ही लिखते हैं । उनकी आख्यायिकाओं में जीवन की यर्थाथता है पर कहीं भी उसका विकृत रूप नहीं है । उनमें लेखक की अनुभुति है और वह उदार भाव है जिसके कारण जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर भी हम लोगों में सच्चे सहानुभूति की वेदना उत्पन्न होती है । उनमें कटुता नहीं,उन्माद नहीं और उग्र असन्तोष नहीं,

अर्पा नदी के तीर पर , विलासपूर में वनमाली जी एकान्त भाव से कथा - साहित्य की साधना में लीन हैं ।

रंग न गोरा है न सांवला ही । कद सामान्य । अधपके से बालों के नीचे झांकता चमकदार ललाट । चश्मे के भीतर झलकती शांत आंखें-मानों अनुभवों की गहरी घाटी में शीतल जल की झीलें हों । मुखाकृति पर एकान्त भाव । स्वभाव ऐसा कि इस दुनिया से न कुछ लेना और न कुछ देना । किन्तु यह अर्थ नहीं कि मेलजोल से उन्हें प्यार ही नहीं !

लिखते बहुत कम हैं, जीवन की दैनिक समस्याओं की मरुभूमि में प्रतिभा की लहरियां जब कभी सिर उठाकर झलक पाती हैं; अतएव साहित्यजगत में 'वनमाली'की धूम-धाम के बाजे कभी नहीं बजे ! आइये, जब कभी मिलने वाले कथाकार कि पास बैठकर कहानी सुनें--

स्वामी

कामनी के भीतर उस युवक की अधूरी तस्वीर आज भी पड़ी हुई है, जो कुछ ही क्षण उसके जीवन में रहा है । और जो अब कभी भी नहीं आने को है ।

कानी जब घर थी, तब उसने अपने पड़ोसी के यहां शादी-ब्याह के अवसर पर दो-तीन बार उस युवक को देखा था । वही युवक उसके लिए यौवन का संदेश लाया था । उसीको देखकर अनजाने आदमी से अपनापा जोड़ने की उसकी इच्छा जागी थी और वही कितने दिनों तक उसकी अंधेरी दुनिया का दीपक बना रहा ।

भाग्य से या अभाग्य से उसी आदमी का कामनी के गांव में विवाह हुआ । विवाह में ही वह कुछ क्षण उस युवक का सामीप्य प्राप्त कर सकी थी ।

युवक बिदाई के समय जब घर में आया, तब कामनी ने जाकर कहा–"बधाई दूल्हा राजा ।"

युवक इस अपरिचित युवती का कुछ मतलब समझा, कुछ समझकर नहीं समझा । बोला–"बधाई क्यों ?"

कामनी ने बताया–"बहू जो तुम्हें परी-सी मिल रही है ।"
युवक ने सोचा जिस आदमी का यह सौंदर्य बखाना जा रहा है, उससे तो वह अभी ऐसा परिचित नहीं है कि वह किसी की राय से एकदम सहमत हो जाय । पर इसी कारण जो प्रकाश अयाचित रूप से उसके सामने फट पड़ा है, उसका वह क्यों अनादर करे ?

तब उसने चट से कह दिया–"पर क्या तुमसे भी अधिक ?"

उस समय तो कामनी उस युवक को शैतान बनाकर भाग आयी; किन्तु वह उसे भूली नहीं । उस शैतान ने एक क्षण को ही उसके अन्दर की मूक-अरूप कल्पनाओं को कैसा छेड़ दिया ! उसकी नारी को स्पर्श कर कैसा आल्हादित कर दिया । उस पर-

देशी के पास और तो कोई विनिमय का जरिया था नहीं। पर उस जरा-सी बात के द्वारा ही वह अपनी कितनी सहानुभूति, अपना कितना अपनापा उसे दे सका। उससे तो उसका कुछ भी परिचय था नहीं, कुछ भी साक्षातकार हुआ नहीं था। किन्तु तब भी उसने उसे कितना बड़ा करके जाना ! अपने हृदय का कैसा मीठा दान दिया उसे !

कामनी के लिए वह मीठा दान अब तक मीठा बना हुआ है, सो इसकी जिम्मेदारी उसके स्वामी पर भी है। उसने कभी भी कामनी के भीतर अपनी सीमा कठिन करने की फिकर नहीं की है। वह कभी अपने दावे की बात नहीं उठाता। जितना रस उसे मिल जाता है, उतने से ही वह अघा जाता है। नहीं तो वह भूखा है या प्यासा, इसकी भी उसे चिन्ता नहीं रहती। वह अपनी मर्यादा किसी के भीतर नहीं बनाता, जिससे दूसरा जितना चाहे उतना उस मर्यादा में आकर एकरस हो जाय। वह स्वामी है। वह किसी से भोग नहीं मांगता, पर जो चाहे भोग लगाकर उससे वरदान पा ले।

पर कामनी के भीतर की स्त्री तो ऐसी मूक-अरूप नहीं, जो इस तरह उसका काम चल जाय। वह तो बड़ी आलोड़ित और आलोकित है। वह चाहती है कि कोई उसे अपने सपनों की बुनावट में उलझाये और उसकी याचना करे। कोई उस पर दावा चलाये, ताकि वह उससे मान-सम्भ्रम का स्वांग भर सके। कोई उसे अपने भीतर की सारी दिलचस्पी से, सारी गर्मी से मंडित करे, जिससे वह समझे कि उसके भी कहीं प्रभु हैं, जो सम्पूर्ण उसके हैं; जो सभी वसुधा और वैभव के दाता हैं; जिनसे हार मान लो तो भी जीत है और जीत जाओ, तो भी जीत का सुख नहीं; जो दिल के भीतर ऐसा मोह भरते हैं, ऐसा अभिनय ऐसा अभिसार, कि —

और जब कामनी एक दिन स्वामी से खीज बैठी, तब उसने प्रश्न किया—"मेरे साथ तुम्हारा ब्याह न हुआ होता, तो तुम बड़े मजे में रहते ? क्यों न ?"

स्वामी थोड़ी देर के लिए दुबिधा में पड़ गया। बोला—"मैं ऐसा क्यों सोचूं ?"

कामनी ने उसी की बात को दुहरा दिया—"जरा सुनूं, तुम्हें ऐसा क्यों नहीं सोचना चाहिए ?"

स्वामी ने कहा—"मैं क्या तुम्हें प्यार नहीं करता ?"

कामनी ने जबाब दिया—"पर मैं ही यदि तुम्हें प्यार न करती होऊं तो ?"

अब बात जरा बाँकी हो गयी। पर स्वामी को अपने को प्यार न कर सकने के कारण कोई व्यथा नहीं हुई। वह जो उसकी है, उसके न करने से ही क्या सारी बात खतम हो जाती है ? वह पूरी तरह से जानता है कि उसकी ऐसी बड़ी मर्यादा कि जिसमें पहुँच-कर आदमी बिराना रह ही नहीं सकता। यह तो कामनी की सिर्फ उसे छेड़ने की, उभा-रने की चाल है। वह भूल नहीं करेगा।

उसने कहा—"तो तुम्हारा ख्याल है कि तुम्हारे प्यार न करने के कारण मैं प्यार करना छोड़ दूँगा ?"

कामनी, स्वामी के ऐसे सरल विश्वास को समझी, शायद नहीं समझी।

पर, आज बरसात की गीली दोपहरिया में जब कामनी छत पर खड़ी दूर क्षितिज में थिरकते बादलों को देख रही है, तो बरबस उस सरल विश्वास की बात उसके मन में उठती आ रही है।

अभी-अभी वह अपनी पड़ोसिन को बिदा करके आयी है। वह इस पड़ोसिन को बहुत दिनों से जानती है। पड़ोसिन बड़ी ही साधारण, अपने में दबी-मुँदी स्त्री है। कुछ पढ़ी-लिखी नहीं है और सदा सामान्य, प्रचलित रोजमर्रा की बातों को लेकर ही उसका रहना है। कामनी ने उसे हमेशा अपने से हीन जाना है। उस स्त्री का पति भी कुछ ऐसा अच्छा नहीं है। वह किसी दफ्तर में क्लर्क है। ऊपर से तन्दुरुस्त होकर भी वह ऐसा नहीं कि किसी के भीतर अपने लिए कुछ प्रीत उपजा सके। वह बड़ा फीका सा, ओछा सा, लगता है। उन दोनों के पास बहुत ही जुजबी सामान है। उसी को लेकर वे इस जिन्दगी को चला रहे हैं। इसमें यह जिन्दगी चला लेने की भावना ही प्रमुख है। लेकिन इस चलाने से अधिक कुछ सार्थक, रसकारी इस जीवन में घट सकता है, इसकी कल्पना भी जैसे उसके मन को छू नहीं सकती। उनका इस संसार के पास जैसे कोई जोर-दावा नहीं है। वे बस प्रार्थी होकर रह रहे हैं। वे भी क्या एक दूसरे के लिए बनते होंगे ? उन्हें भी क्या यह बेस्वाद जिन्दगी उलझाती होगी ? यह तो बड़ा घिनौना है कि यह रहना ऐसा सकरा है, ऐसा फीका हो !

परन्तु आज—

आज वही सूखी पड़ोसिन बाचचीत के सिलसिले में उससे प्रश्न कर बैठी—"कहो बहन, तुम्हारी उनसे कैसे निभती है ?"

कामनी को पहले यह प्रश्न उसके मुँह से सुनकर जरा बेसुरा-सा लगा। उसे नहीं सूझा कि इस प्रश्न के जवाब में वह स्त्री क्या जान लेना चाहती है या क्या जान लेने की इच्छा रखती है। और वह कुछ जान भी लेना चाहती है–यह भी क्या वह मान ले ? तब कोई बात उसके भीतर आयी और गयी। आयी और गयी। और कामनी ने कहा–" ठीक ही तो जी।"

पर पड़ोसिन की इस छोटे-से ठीक से तबीयत क्या भरी ? इसीसे शायद इस कमी को उसने अपनी कथा से भरना चाहा। उसने बताया कि 'उन्हें' उसके बिना घड़ी-भर भी चैन नहीं मिलता। दफ्तर से लौटते हैं, तो बस फिर उसीके पास की रट लगाया करते हैं। छुट्टी के रोज तो सचमुच उसे वे अपने पास से घड़ी-भर को दूर नहीं करते–

कामनी को जैसे यह बात नहीं सुहायी।

उसने टीका की–"हां–हां, कुछ लोग ऊपर से इसी तरह फाफा दिखाने में बड़े कुशल होते हैं।"

पर दूसरी तरफ से झट बानगी पेश की गयी। कहा गया कि कामनी उसके बदन पर जो साड़ी देखती है, वह उन्होंने बड़े काट–कसर करके, अपनी जरूरतों की कुछ परवा न करके उसके लिए ला दी है। कामनी सच ही जाने कि वे उसकी कोई बात सुनी अनसुनी नहीं करते। वे बड़े भले हैं। उनकी बातें–

और कामनी सोचती रही कि यह बहन कब जाय, जिससे उसकी रामकहानी से पीछा तो छूटे।

जब पड़ोसिन चली गयी, तब कामनी ने छत पर आकर चैन की साँस ली और उसके मुँह से एकाएक निकला–"बड़ी बेहूदी स्त्री है। जैसे संसार में इसी के स्वामी हैं। और तो सब बगैर पति की हैं।"

किन्तु अब कामनी को यह कहकर संतोष नहीं हुआ। उसे अपने हृदय के किसी अदृष्ट कोने में लगा कि यह उसकी गलती है। स्वामी तो सिर्फ इस स्त्री को ही प्राप्त हैं। इसीके भीतर पहुँचकर यह स्वामी का रिश्ता पूरी सजगता से फैल पाया है। उसके जैसे स्वामी हैं, वह तो संसार से कुछ छिपा नहीं है। पर जगत् से उनका क्या नाता है, इसकी उसे क्यों परवा होना चाहिये ? उसके तो वे संपूर्ण स्वामी हैं। सम्पूर्ण स्वामी का दावा लेकर

ही तो उनका उससे संबन्ध है। वह इस दावे की बात को कैसे भुला दे ? और इसीसे उस बेचारी ने उन्हें अपनी सारी संवेदना देकर, अपने अन्दर की सारी महिमा सौंपकर, हृदय की सुनहरी सीमा में इतना बड़ा कर लिया है। उसके भीतर जिस पुण्य चीज का स्फुरण है, उसे झूठ मानकर अपने भीतर कैसे आश्रय दिया जाय ? उसकी कैसे अवहेलना की जाय ? और अवहेलना नहीं की जा सकती, इसीसे कामनी ने उसे इस क्षण अपने से हीन नहीं जाना। वह उसे अपनी पूर्ण सहानुभूति दे सकी।

किन्तु सहानुभूति पाकर ही कोई विश्वास भीतर जागकर उससे पूछने लगा कि वह भी क्यों उस स्त्री की भाँति अपने स्वामी पर अभिमान नहीं कर सकती ? क्यों उस स्वामी ने उसके प्राणों में उतरकर उसे भी वैसा चंचल और रसमय नहीं बनाया ? क्या उसके भी कोमल हृत्पिण्ड में लगा है कि उसके भी कहीं महाप्रभु हैं, जो उसकी मूक पीड़ा को, करुण वेदना को वाणी और आकार दे सकते हैं ? वह तो कभी भी पूर्ण-पूर्ण अपने को उसकी रखवाली में नहीं सहेज पायी है। नहीं सहेज पायी है, इसीसे कामनी अपने सामने हीन हो पड़ी। जिनको पाकर स्त्रियों का सम्मान है, जिनके अनादर से वे कुछ भी नहीं हैं, उन्हीं को वह आज तक अपने अन्तर में नहीं प्राप्त कर सकी है। वह सचमुच कैसी दीन है ! कैसी प्रार्थी है !

कामनी आज प्रार्थी होकर स्पष्ट देख पायी कि उस युवक का मीठा दान कहीं जाकर कड़वा भी हो गया है। वह पराया आदमी उसके जीवन में किसी क्षण खूब फैल-कर, खूब स्वाधीनता से रहा है। पर क्या वह सब दिन उतना ही बड़ा-चौड़ा होकर उसके भीतर फैलता रहेगा ? आज तो उसके भीतर उसकी सीमा संकुचित हो पड़ी है। वह उस सीमा में पूरा कैसे भरेगा ? और भरेगा नहीं, तो क्यों व्यर्थ उसने उसे अपने को छेड़ने को क्यों भीतर रख छोड़ा है ?आज तो वह बात घृणा और लज्जा से सन गयी है। वह उसमें पूरा रस लेगी तो कैसे ? कामनी देख पायी कि जैसे अभी तक सब दिन हृदय के एकान्त में वह उस कुटिल युवक की ही अभ्यर्थना करती रही है। जो सच्चे अभ्यागत हैं, उन्हें केवल अर्घ्य का उच्छिष्ट भाग ही मिलता आया है। इसीसे उनकी सीमा ऐसी कठिन ऐसी मजबूत उसके अन्तस्तल में नहीं बन पायी है !

तभी कामनी की आँखों को चीर कर निकल आये वे उन्मादे बादल , जो थिर-कते ही आते थे और धीरे-धीरे अपनी कतारें लगाते जाते थे। उनकी सजल कृष्ण रेखा क्षण-क्षण और घनी होती जा रही थी। कामनी को अपने हृदय में भी कुछ घना-सा होता

हुआ जान पड़ा। उसे मालूम हुआ कि स्वामी का वह सरल विश्वास उठ-उठकर उसके भीतर सजीव और मूर्तिमान होता जा रहा है। कामनी की भी इच्छा हुई कि उसका स्वामी उसके पास हो और वह अपने को खूब फैलाकर, खूब फैलाकर उन्हें घेरकर बैठ जाय, ताकि वह इतने दिन के अभाव को, दूरत्व को, विच्छेद को पल-भर में दूर तक छा ले। वह चाहने लगी कि उसका स्वामी हो और वह उससे कहे कि वह उन्हें खूब चाहती है-खूब, उनसे ऐसे प्रेमकी नाप-जोख हो सके, तो वे देखें। वे डर तो बिलकुल नहीं करें। वह तो सदा अपने को निवेदन के रूप में लेकर उनके पास है। और कामनी के भीतर स्वामी उमड़ता ही आया। उमड़ता ही आया।

उसी उद्वेग में कामनी का ध्यान गया अपने मकान के नीचे से बही जाती भीड़ की ओर। कितनी तरह के लोग हैं। कितनी तरह की स्त्रियां हैं। बच्चे भी इनके पास हैं। पर कामनी को अपने उस क्षण में लगा कि वे बड़े बेसुरे हैं। वे बड़े संगीत-हीन हैं। वे बड़े मोटे-मोटे, थलथल और भोंडे हैं। जा रहे हैं, जैसे उन्हें कोई पीड़ा नहीं, वेदना नहीं। या उनके मोटेपन को कोई पीड़ा छेद ही नहीं सकती। क्या उन्हें भी अपने रहने पर कुछ कुण्ठा या लज्जा लगती होगी? क्या इनके दिल में भी कुछ घना होता होगा? किसी सामंजस्य के लिये क्या कभी इनके प्राण भी भटकते होंगे?

उसी आवेश में कामनी नीचे उतर आयी। उतर आकर वह अपनी पड़ोसिन के घर पहुँची और बोली—"देखो जी, मैं तुमसे झूठ बोली थी। सचमुच मेरी उनसे ठीक नहीं निभती।"

और कामनी लौट आयी।

वे उन्मादे बादल तब भी आकाश में घिरकते आते थे।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

जीवन के बीच में

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

छायावाद के उनीदे भोर के बाद प्रगतिवाद की कसमसाती अँगड़ाइयाँ ।

और नवीन हिन्दी-काव्य के क्रांतिदूत अंचल का आगमन ! जीवन को निष्क्रिय, उदास और अर्धचेतन आलस्य प्रदान करने वाली प्रवृत्तियों में विद्रोह की ज्वाला फूँकने वाले , दहकते अंगारों के फूलों की वासन्ती आभा में जीवन के अंगूरी गीतों के एक निष्ठ गायक । अशरीरी सौंदर्य-साधना में स्थूल आनन्द भावना के प्रतिष्ठाता । 'अंचल' के काव्य में यौवन का प्रखर प्रवाह है; सागर-तट पर खिले गुलमौर फूल के समान आभा है ; बेत-हाशा जोश, बेशुमार रवानगी और जिन्दगी की सदा बहारी अमराइयाँ !

पुष्ट शरीर । उन्नत ललाट । चौड़े कंधे । खुलता हुआ गेहुआँ रंग । चौकोर-सी मुखाकृति, विशेष आकर्षण लिये । हर बात को आत्मविश्वास के साथ; जरा जोर से कहने की आदत और हमजोलियों में बैठकर ठहाके मारकर हँसने का स्वभाव; इस व्यक्तित्व के निकट आने पर लगता है--बहार का नाम ही जिन्दगी है !

जबलपुर के महाकोशल महाविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर; अनेक काव्य-संग्रहों के प्रणेता; उपन्यास लेखक; नई पीढ़ी के नवीन दृष्टिकोण-सम्पन्न कलाकार । विषय-सामग्री अभिव्यक्तिकरण और जीवन-संदेश में अभिनव प्रयास करने वाले 'अंचल' कथा-साहित्य में भी अपना स्थान निश्चित कर चुके हैं । अतएव आइये 'अंचल' के साथ हम पदार्पण करें, 'जीवन के बीच में ' ।

जीवन के बीच में

कहानी मेरी है, मगर उसके सर्वस्व तुम हो। जीवन मेरा है, उसके पाप-पुण्य, सुख दु ख का लेखा मैं दूँगी; मगर उसके कर्ता तो तुम्हीं हो। विनाश मेरा है. पतन मेरा हुआ है और उसके अंजाम मुझे भोगने हैं; परन्तु दिल में तुम्हारी तस्वीर जो कसकती है। एक विचित्र-सी बात है न !

संसार में आने के पहले मैं क्या थी, और कहां थी,और कैसे रहती थी, यह तो कुछ नहीं जानती, परन्तु तुमसे मिलने के पहले मैं कैसी थी और किस तरह जिन्दगी के कच्चे दूध से धुले सफेद रास्तों पर चल रही थी, यह अब भी ज्यों का त्यों याद है। आज जिन्दगी की नंगी कटुता और बीभत्स छलनाओं से घिरी मैं असमय में ही जैसे निस्साहस और निरुद्देश्य सी हो गयी हूँ, ऐसी उस समय तो नहीं थी। आज जब जीवन का वह बीते स्वप्न-सा युग याद आता है तो लगता है, जैसे मैं असमय में ही बुझ गयी-मैं जो दीपशिखा की तरह प्रकाश फैला सकती थी और आग लगाकर भस्म भी कर सकती थी ! जीवन का यह सब तब अपरिचित था। आज गर्म साँसों में लू भरने वाली अंतर की आग पीने में असमर्थ हूँ। जहर का यह लबरेज प्याला आज मुझसे नहीं पिया जाता। मैंने भी जीवन देखा है। मैंने भी कुरबानी का सुख उठाया है। किसी के ऊपर लुटकर, मिटकर, और अपने को खोकर। आज भले ही वह सभी आँखों को स्वप्न सा लगता हो, जब दिल की आरती की सब बत्तियां एक साथ जल उठतीं थीं। आज भले ही वह मिठास, वह उन्माद, वह सुख एक अशांतिमय ज्वाला में छन चुका हो। परन्तु मैंने भी जीवन देखा है। मैं कैसे इतने बड़े सत्य को छिपाऊं? मैं कैसे भूल जाऊं कि नारी का समर्पण, जिसे मैं आज अपने में छिपाती फिरती हूँ, उस समय मेरे प्रत्येक अंग से छलकता था ? तुम आज न जाने कहाँ हो ? जैसे नाटक का एक पार्ट करने के लिये ही तुम मेरी जिन्दगी के स्टेज पर आये थे, और फिर वैसे ही बेलौस और निर्लिप्त चले गए।

तुम एक बड़े जमींदार के इकलौते लड़के थे। वैभव और विलास में आकण्ठ डूबे हुए। तुम्हारी जूठन के लिए भी न जाने कितने लोग उत्सुक रहते थे। मैं एक अहीर की लड़की थी। गाँव में पली, पढ़ी और गांव से ही परिचित। होस्टल में तुम रहते थे और मेरा

गांव वहां से तीन मील पर था। कभी-कभी जब मैं अपने बापू के साथ दूध देने आती तो मेरी हिम्मत भी न पड़ती थी कि मैं तुम्हारे कमरे में पैर रखूँ। रंग-बिरंगे पर्दे और कांच के चमकते हुए सामान, ये सब मुझे जादू के लोक से लगते थे। बचपन में गांव की पाठशाला में पढ़ी किताबों की परियों की कहानियां और उनके देश याद आ जाते थे। तुम जब पलंग पर पड़े अपनी नशीली आँखों से मेरे अंग-प्रत्यंग को देखने लगते थे, तो मैं एक ठण्डी - ठण्डी सिहरन से भर जाती थी।

मुझे याद आ रहा है। जाड़े की एक सुबह थी। मैं अपने बापू के साथ दूध देने आयी थी। तुम्हारे रूम के सामने ही सिकुड़कर खड़ी हो गयी थी। उस दिन बहुत ही भयंकर सर्दी थी। तुम्हारा कमरा बिजली के चूल्हे से गर्म था। मैं बाहर खड़ी अपने नीले पड़े शरीर में दुबकी जा रही थी। तुमने पुकार कर अपने नौकर से कहा था—देख, इस ग्वाले की लड़की को यह पुराना कम्बल दे दे।

मैं औरत थी न ! हृदय में उसी समय-एक मिठास-सी पैदा हो चली। मेरा भी कोई है। मेरे ऊपर भी कोई रहम की निगाह फेंक सकता है। रह रह कर दिल में यही हिलोरें उठती रहीं। कम्बल को लेकर जब मैं लौटी तो रास्ते में भी तुम्हारा मोहन रूप आँखों में उमड़ता रहा। उसी दिन मुझे यह भी ज्ञात हो पाया कि जैसा सुन्दर तुम्हारा कमनीय गात है, वैसा ही हृदय है। वह कम्बल कहने के लिए पुराना था, परन्तु था बिलकुल नया। मैं एक असह्य अभिमान से फूल-फूल कर खिलती हुई घर चली गयी। मेरी सहेलियों ने उस कम्बल को सतृष्ण नेत्रों से देखा और उनमें से एक ने, जो कुछ बड़ी भी थी, एक अर्थभरी हँसी हंसकर कहा था—खूब गरमाया करेगी, चम्पा, तू इस कम्बल में !

इसके बाद मैं अक्सर तुम्हारे यहाँ जाती। मैं गरीब घर की लड़की—मेहनत-मजूरी में ही मेरा सारा दिन बीत जाता, लेकिन जिस दिन सुबह जाकर, अपने बापू के साथ, मैं तुम्हारा रूप देख आती उस दिन मैं दिन भर सुनहले स्वप्न ही देखा करती। कभी देखती, तुम मेरी झोपड़ी में आ गये हो और तुमने मुझे आज्ञा दे दी है कि मैं तुम्हारी पूजा करूँ-मैं जंगल से करौंदे के फूल चुन चुन कर ला रही हूँ और तुम्हें माला बनाकर पहना रही हूँ। तुम देवता के समान महान, मौन और पाषाण, मेरी पूजा स्वीकार कर रहे हो। कभी मैं देखती-मैं गाय के ताजे दूध से तुम्हारे पैर धो रही हूँ और तुम मुझे एक विचित्र दृष्टि से देखते हुए आशीष दे रहे हो। इसी प्रकार न जाने कितने दिवास्वप्न मैं देख जाती। कभी देखती—तुम अपनी बहू के साथ बैठे बातें कर रहे हो—ठीक वैसी ही बातें जैसी पति और

पत्नी में रस की घड़ियों में होती हैं, और मैं कुछ दूर पर खड़ी तुम्हारे पलंग पर फूलों की सेज बिछा रही हूँ। परन्तु एक बात जो तुम्हारे अभाव में भी मेरा पीछा न छोड़ती थी, वह थी तुम्हारी आँखों की शराब और चितवन का नशा। जैसे मैं बेसुध हो होकर अपने को तुम्हें दिखाती और तुम घंटों मुझे देखा करते। मुझे एक विचित्र सुख मिलता था। मेरा एक एक रोम खड़ा हो जाता था और तपते हुए सूर्य की किरणों के नीचे भी मैं एक मीठी सिहरन से कांप उठती थी।

क्या मैं तुम्हें प्यार करती थी? भला तुम, जो मेरे लिये आकाश कुसुम से थे, मेरे प्यार की परिधि में कैसे अंट पाते? पर मुझे एक नैसर्गिक विसर्जन का सुख तो मिलता ही था। जैसे मेरे शरीर का सारा रक्त, मांस, यौवन से मिली सारी अंग-सुषमा तुम्हारी ही हो।..... सहसा गमक-गमक कर तुम्हारे चारों ओर अपने को लपेट लेना चाहती थी, जैसे वन की लता एकाएक अपने पास किसी सुदूर वृक्ष को देखकर उसपर चढ़ने और लिपटने के लिये झूमने लगती है।

उस दिन होस्टल में शाम को दूध पहुँचाना था। एकाएक बापू को जोरों का बुखार आ गया। मैं ही घर में अकेली काम करने वाली रह गई। सब लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गये। बीस सेर दूध पहुँचाना था। बहुत जरूरी काम था। शाम का खास आर्डर था मगर बापू को इतने जोर का बुखार था और जाड़ा लग रहा था कि उनका जाना नामुमकिन था। मैंने हिम्मत करके कहा---कोई फिकर नहीं है। मैं दूध पहुँचा दूँगी। बापू ने काँपते हुए कहाँ---चम्पा! तू अकेली कैसे जायगी? शाम का वक्त है। लौटते-लौटते तो और रात हो जायगी। मैंने कहा---कोई बात नहीं है। तुम फिकर न करो, मुझे डर नहीं लगता।

मां--बाप को आश्वासन देकर मैं चली। रास्ते में तरह-तरह के ख्याल मन में आने लगे। मुझे तीन मील का रास्ता तय करना था। और लौटते लौटते तो और रात हो जायगी। एकाएक तुम्हारी मूर्ति फिर आँखों के सन्मुख घूमने लगी। मैं जैसे अपने से चिपटी जा रही थी। साँझ के समय यों ही न जाने मन में कहां कहां की पीड़ा घनी हो जाती है। फिर मैं तो उस समय अपने को और निस्सहाय देख रही थी। घर में कोई भाई-बहिन नहीं। पिता अधबूढ़ा और बीमार। मां चिड़चिड़ी और आँखों के सामने आजीवन अपना भाग्य देखते रहने पर भी उसे न चीन्हने वाली। संसार में कहीं, किसी ओर, मेरा कोई नहीं। तुम अवश्य मेरे, मगर कितनी दूर। आकाश के नक्षत्र के समान ऊंचे और अलभ्य। असंभव। मेरी

जैसी न जाने कितनी तुम्हारे यहाँ नौकरानियां होंगी। मेरी बिसात ही क्या ? फिर भी मेरे दिल में मिठास लिये जलने वाली जो आग लगी थी उसे यदि तुम देख या सुन लेते तो मुझको कितना बड़ा बोध होता। रह रह कर मेरे मन में एकाएक जो उच्छ्वास भर आते थे, उनसे मेरी आँखें नम हो जाती थीं। उस समय सूर्य अस्त हो गया था और फीकी-फीकी सी कालिमा चारों तरफ़ फैल रही थी।

मैं होस्टल की ओर बढ़ती जा रही थी। सिर के ऊपर २० सेर का दूध का घड़ा था-काफी भारी था और उससे भी अधिक भारी था मेरा मन। उस समय रह रह कर मुझे यही ख्याल होता था, जैसे मेरे जीवन की गति अन्धी है। न जाने कब का बूंदबूंद इकट्ठा दर्द मेरे अन्तर में उस समय उमड़ रहा था। मैंने मन की उस प्रचंड गति को रोकने के लिये जोर-जोर से पैर पटक कर चलना और बीच बीच में गीत गाना शुरू किया। मैं जल्दी से जल्दी होस्टल पहुँचकर दूध देकर घर लौट आना चाहती थी। जानती थी, जब तक लौट न आऊँगी तब तक बापू को चैन न आयेगा। मैं और जल्दी चल पड़ी। होस्टल के फाटक के पास पहुँचकर मैंने एक आराम की साँस ली। सिर पर से दूध का घड़ा उतार कर जमीन पर रख दिया। अपने अंग-प्रत्यंग पर एक मोह भरी दृष्टि डाली। इसके बाद एक अंगड़ाई लेकर और हाथ पैर की अँगुलियां चटकारकर, मैंने अपने थके हुए शरीर को चेतन किया। किस किस कमरे में दूध दिया जाता था, यह मैं जानती थी। वहां जा-जाकर मैंने दूध दिया। कुछ बाबू लोग अपने कमरों में थे, कुछ नहीं थे। नौकरों ने दूध ले लिया। उनकी निगाहों का अर्थ मैं जानती थी। अब तो मुझे तुम्हारी ही दृष्टि चुभती थी। केवल तुम्हारी आँखों की वासना बरदास्त कर सकती थी। तुम्हारे देव-दुर्लभ मोहन स्वरूप का मेरे ऊपर यही प्रभाव पड़ा था।

तुम्हारी मूर्ति का ध्यान आते ही तब मुझे यह प्रतीत होता था जैसे मैं कुछ ऊपर उठ रही हूँ, मेरा मस्तक ऊंचा उठता जा रहा है। जैसे मैं एक साधारण अहीर की लड़की न होकर एक सम्भ्रांत कुल की नारी हूँ और तुम्हारे ही चरणों पर अपना सारा प्रेम और निष्ठा, अपना सर्वस्व, समर्पण करने के लिये पैदा हुई हूँ ! मैं ऐसी ही स्वप्न भरी बातों में उन दिनों डूबी रहती थी। सोते जागते, उठते बैठते, प्रतिक्षण। वहां से दूध देकर मैं तुम्हारे कमरे के सामने आई। कमरा खुला था। तुम पलंग पर लेटे अनमने से इधर उधर ताक रहे थे। मैंने दरवाजे की देहरी पर खड़ी होकर कहा—बाबू ! दूध लाई हूँ।

तुमने मेरी ओर ठंडी निगाह से देखते हुए कहा—अच्छा।

मैं पांच मिनिट तक वैसी ही शांत और निस्पंद खड़ी रही और तुम मेरी ओर बराबर देखते रहे।

मैंने कण्टकित होते हुए, साहस बटोर कर, कहा—नौकर कहा है बाबू !

तुमने कहा था—वह तो घर गया है। कमरे में उधर लोटा रखा है, उसी में डाल दो।

लोटा तो कमरे में इधर उधर न था। वह तो तुम्हारे पलंग के नीचे था। मैंने इतना सब एक निगाह में देख लिया था। कुछ कुछ दबती, सिकुड़ती और एक अर्धज्ञात और अज्ञात आशंका से भ्रांत तुम्हारे पास आकर और नीचे झुककर लोटा निकालने लगी। तुम्हारा सामीप्य—यही तो मेरे जीवन का स्वप्न था, यही तो मैं चाहती थी। इससे अधिक की आशा उस समय मुझे कहाँ थी ?

मैंने लोटा उठाकर टेबिल पर रख दिया और दूध नापकर डालने लगी। तुमने कहा——तुम्हारा नाम चम्पा है न ?

हां।
आज तुम अकेली आई हो ?
हां।
क्यों ?
बापू बीमार हो गये हैं।
होस्टल में और कमरों में दूध दे आई ?
हां।
क्या अब घर जावोगी ?

मैंने अपनी दोनों झुकी हुई आँखें ऊपर उठाकर जैसे कहा—कहिए, आपका मतलब क्या है ?

तुमने एक मीठी और विश्वास उत्पन्न करने वाली हँसी हंसते हुए कहा था—कुछ नहीं, तुमसे दो चार बातें करनी थीं। आज मैं बड़ा दुखी हूँ। अपना दुख किसी से कहने से जी हल्का हो जाता है न ?

मैं भी तुम्हारे दुख से सजल हो उठी। मेरे बाबू को दुख है। आज उनका चेहरा भारी है। घर से शायद आज कोई दुखद समाचार आया है।

मेरा जीवन तो धन्य हो जायगा यदि मैं उनके पास बैठकर दो घड़ी उनकी बातें, दुख की चर्चा सुनकर उनके मन का बोझ हलका कर सकूँ। मैंने जमीन पर बैठते हुए कहा- आप कहिये। मैं सब दूध दे आई हूँ।

मैं चुपचाप सिहरती-काँपती जमीन पर बैठ गई। तुम चारपाई पर लेटे लेटे न जाने कितनी देर बातें करते रहे। मैं क्रमशः आत्मविभोर हो उठी.........

उस रात को मैं अपने घर की ओर जाते हुए पृथ्वी में जैसे गड़ी जा रही थी।

—और आज तन बेंच-बेंच कर दो-दो चार-चार आने पैसे लेते भी लाज नहीं लगती।

* * * *

सहसा उसका मन और दूध भरे स्तन दोनों दुखने लगे। उसका सोता हुआ बच्चा चौंककर जाग पड़ा। वेश्या माँ ने उसे उठाकर चूम लिया।

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

भूल भुलैयां

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव का साहित्यिक व्यक्तित्व उस लहर के समान है, जिसका उद्गम प्रतिभा की गोद में हुआ; किन्तु भाग्य को यही स्वीकार था कि प्रतिभा की लहर हरित वन-उपवन में न बहकर, मरुधरा के बीच बहे और जिसकी तरल-विदग्धता व्यापार के रेतीले व्यवहार में खो जाय !

श्रीवास्तव जी ने हिन्दी, अँग्रेजी और उर्दू के साहित्य को बड़ी तन्मयता के साथ परखा है। फल यह हुआ कि उनकी अभिव्यक्ति में स्वष्टवादिता अधिक आ गई है। उनके दृष्टिकोण में स्वाभाविकता ही साहित्य का प्राण है। कथाकार के अतिरिक्त, वे एक अत्यन्त सफल एवं लोकप्रिय कवि भी हैं। उनकी विदग्ध-भावुकता, दर्द, और सहज रसानुभूति ने मिलकर उनके काव्य का शृंगार किया है। श्रीवास्तव जी के साहित्य का प्रधान गुण व्यंग और विनोद का सुखद-संगम है। 'हजरते ऊँट' को कौन नहीं जानता ?

श्रीवास्तव जी जबलपुर में इंडियन प्रेस (शाखा) के मैनेजर हैं। श्रीवास्तव जी हिन्दी-साहित्य के आधुनिक संसार में सबसे ऊंचे-पूरे छः फुट--शायद एकाध इंच अधिक भी--व्यक्ति हैं। ५३ वर्ष की आयु होने पर भी वे युवक की तरह उमंगों से भरे और कर्मरत हैं। उनके बिना हर 'महफिल' उजड़ी-उजड़ी लगती है। जहाँ वे बैठ जाते हैं, वहीं 'मयखाने' की मस्ती का आलम छा जाता है। अपनी मौजों में बेरोक टोक बहने वाले 'दरिया-दिल' दरिया के समान श्रीवास्तव जी का व्यक्तित्व साहित्यिक गोष्ठियों और सम्मेलनों में अद्भुत आकर्षण की वस्तु बन जाता है !

श्रीवास्तव जी का साहित्य अप्रकाशित है। इस ओर से वे उदासीन हैं। आत्म-विज्ञापन में उनका बिलकुल विश्वास नहीं है। लिखते कम हैं; किन्तु जो लिखते हैं, उसे जीवन से विलग नहीं किया जा सकता। परिचय की 'भूल-भुलैयां' में आपको अधिक न भुलाकर, चलिये श्रीवास्तव जी की कथा के रसास्वादन की ओर ले चलें।

भूल-भुलैयां

ग्यारह से पांच तक शुक्ल जी का (गुप्त) दफ्तर था। मैंने सोने का प्रयत्न किया किन्तु निष्फल। लखनऊ आकर सोने में दिन बिता देने के लिये सुप्तिन्द्रिय तैयार नहीं हुई। नवाबी परिस्तान और लखनऊ की कब्र के दृश्य आंखों के सामने नाच गये। कैसर बाग और इमामबाड़ों के मौन निमंत्रण ने तूफान पैदा कर दिया। मैंने सोचा दिन में इन दृश्यों का आनन्द ले लिया जाय, शाम को शुक्ल जी के साथ लखनऊ के सामाजिक जीवन का कुछ परिचय प्राप्त किया जावे।

मैं चल पड़ा। पूछते पूछते कैसरबाग पहुँचा। वहाँ न परियाँ थीं, न नवाब। एक बड़ी दवा की दूकान, एक होटल, एक सिनेमा-घर और बहुत सी छोटी मोटी बिसातियों की दूकानें। मैंने सोचा यह मोहल्ला पादड़ियों की बातों में आकर ईसाई हो गया है। आगे बढ़ा। दोनों ओर कमरों की कतारें बनी हुई थीं। पूछने पर मालूम हुआ कि शाही ज़माने में इन्हीं कमरों में नवाब साहब की बेगमें रहा करती थीं। अरे, राम राम, कहाँ वह पुतली महल का औपन्यासिक वर्णन और कहाँ ये बोर्डिंग हाउस के ऐसे कमरे ! इनसे अच्छा तो इलाहाबाद का लॉ होस्टल है।

इसी तरह आशा–निराशा का अनुभव करता हुआ मैं बड़े इमामबाड़े के आसपास कहीं जा लगा। एक फेरीवाला छोटा–सा ठेला लिये चक्कर लगा रहा था। उससे पूछा, ‘क्यों भाई इमामबाड़ा किस तरफ है ?’

उसने कहा, ‘यही, आगे हुजूर। उस फाटक से दाहिने घूम जाइयेगा।’
मैंने कहा, ‘उस बड़े फाटक से।’

उसने कहा, ‘जी हाँ, चलिये, मैं भी तो उसी तरफ जा रहा हूँ।’

थोड़ी दूर चलकर उसने पूछा, ‘हुजूर तो अजनबी जान पड़ते हैं। दौलतखाना कहाँ है ?’

मैंने कहा, 'दक्खिन में।' गाँव-कस्बे का नाम-धाम बतलाना व्यर्थ था। मैं जानता था कि 'दक्खिन' कह देने से इधरवाले विंध्या पर्वत और कन्याकुमारी के बीच के छोटे.से देश का भरपूर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

'दक्खिन', उसने कहा, 'वाह! क्या कहना है, हुजूर, दक्खिन का! मैं तो कभी गया नहीं, पर बाप दादे दक्खिन का जिक्र छेड़ देते थे, सच कहता हूँ, हुजुर, एक समा बँध जाता था।"

'अच्छा' मैंने कहा 'आपके बुजुर्गों को दक्खिन जाने की कौनसी जरूरत पड़ गई?'

'हुजूर बाप दादों का किस्सा कहना छोटे मुँह बड़ी बात हो जावेगी। उन लोगों का भी एक जमाना था। अमीरों में गिनती थी, शाही दर्बार में इज्जत थी। रात दिन रईसी चहल–पहल बनी रहती थी। आज फलाँ नवाब की दावत है, कल फलां राजा की पेशवाई है। इसी सिलसिले में दक्खिन की आमदरफ्त हो जाया करती थी। एक जमाना यह है हुजूर कि उन्हीं की औलाद दाने-दाने को मुहताज हो रही है।"

रंग तो हज़रत का था आबनूस जैसा और शकल कोलों जैसी, पर बातचीत का ढंग देखकर ताज्जुब होता था कि यह शख्स भट्टी की पीता है जो दिन-रात इस मजे में बहका करता है।

थोड़ी देर बाद मुझे सिगरेट की तलब हुई। एक मुँह में लगाई, एक मियां फेरी वाले को दी। दियासलाई निकाली तो खाली पाई। उसने बड़े अदब के साथ एक सींक जलाकर सामने करदी। धुआँ उड़ाते हुए मैंने कहा, 'बड़े मियां एक दे भी दो।'

'अभी लीजिए हजूर' कहकर उसने एक नई डिबिया बढ़ा दी। जेब में हाथ डाल कर पैसे टटोले तो रेजकारी नदारत। रुपया दिखलाते हुए मैंने कहा, 'बड़े मियां पैसे तो नहीं हैं?"

'अब तक तो फेरी ही फेरी हिस्से में पड़ी है हुजूर। पैसों का मुँह भी नहीं देखा। पर कोई हर्ज नहीं। हुजूर दियासलाई रखें। पैसा मिल जायगा।"

मैंने ठेले के पास जाकर देखा कि कोई काम की चीज हो तो खरीद ली जाय और दियासलाई का पैसा भी काट दिया जाय।

सुई, सूत, मिट्टी और टीन के खिलौने, साबुन, दियासलाई ऐसी ही चीजें उसके ठेले में थीं। मेरा मतलब समझकर उसने कहा, 'हुजूर के लायक भला क्या चीज हो सकती है? हां एक छड़ी है अगर पसंद आ जाय।' भीतर हाथ डालकर उसने एक पुरानी सी छड़ी निकाली। रूप रंग में पुलिस केन के समान पतरे की मूँठ, पीतल की सामी, लचलची वेत।

'क्या दे दूँ, बड़े मियाँ?

"जो मर्जी हो हुजर' कहकर उसने इस तरह ठेला बढ़ा दिया जैसा सौदा पक्का हो गया हो। एक रुपये से कम देता भी कैसे? दियासलाई का टेक्स चुकते ही उसने कहा, 'यही इमामबाड़ा है हुजूर, बस लखनऊ में एक ही चीज़ है।"

मैंने देखा, एक बड़े कम्पाउण्ड के भीतर, एक पुरानी सी इमारत खड़ी हुई है। दाहिने बायें के खंडहरों पर नज़र डालता हुआ मैं आगे बढ़ा। सीढ़ी तय करके दरवाजे पर पहुँचा। एक दरवान ने स्वागत किया जो गदर के साल भी जीवित रहा होगा। दर्वाजा पार करते ही एक लम्बा चौड़ा हाल मिला। इसमें सन्देह नहीं कि इस कमरे की कारीगिरी विचित्र थी। इतना बड़ा कमरा परंतु न एक डाँट न एक खम्भा। दरवान समझाने लगा—'सामने जो फानूस दिखता है, हुजुर, मोहर्रम मे उसमें ३०० बत्तियाँ जलती हैं।' मैंने उत्सुकता से देखा और अवहेला से आँखें हटा लीं। जिसने बम्बई के रायल आपेरा का बिजली का फानूस जलते हुए देख लिया है, उसे ये पुरानी चीजें जँच नहीं सकतीं। उसने फिर कहा, 'देखिये हुजर, इस हाल की बनावट। ऊपर छत पर आपको चार कोने दिखेंगे; नीचे फर्श पर छः कोने हैं।' मैं उकता उठा। कारीगरी देखनी होती तो जाकर ताजमहल में सर पटकता। वहाँ तो मैं भूल भुलैयाँ देखने आया, जहाँ नवाब वाजिदअलीशाह अपनी ३०० बेगमों के साथ क्रीड़ा किया करते थें, जहाँ समूचा आदमी इस तरह गायब हो जाता है जैसे गधे के सर से सींग और जहाँ दो गोरे विलीन होकर गोमती में बहते उतराते पाये गये थे। मैंने उकता कर पूछा, 'क्योंजी, भल-

भुलैयाँ भी तो इसी इमामबाड़े में हैं ।' उसने कहा, अभी सैर कराता हूँ, हुजूर। ज़रा इस जगह पर गौर कीजिये । यहाँ नवाब साहिब---'

गुस्से की घूंट पीकर मैंने कहा---' अच्छा भाई, यह सब तो देख लिया, अब भूल-भुलैयाँ दिखाओ । '

एक बार उसने अपनी पुरानी दाढ़ी पर हाथ फेरा । मुझे डर लगा कि कहीं वह उसके हाथ ही में न रह जाय । फिर मेरी ओर कुछ सेकेण्ड देखता रहा जैसे कोई अजायबघर में वन-मानुस को देखे । फिर, ' इधर तशरीफ ले चलिये हुजूर ' कहकर वह जीने की ओर बढ़ गया । सीढ़ियाँ तय करते हुए उसने पूछा---' हुजूर परदेसी जान पड़ते हैं । हुजूर का दौलतखाना कहाँ है । ' मैंने थोड़े में जवाब दिया, ' दक्खिन । ' ज्यादा तूल तबील की गुंजाइश नहीं थी । सीढ़ियाँ चढ़ते दम फूल रहा था । उसने गर्दन घुमाकर एक बार फिर मुझे सर से पाँव तक देखा ।

ऊपर बहुतसे छोटे छोटे खण्ड बने हुए थे । ऐसा जान पड़ता था कि इमारत अधबनी छोड़ दी गई है । फर्श पर चूना धूल हो रहा था । छत पर चमगादड़ लटकीं हुई थीं । कहीं कहीं कबूतर निरर्थक ' गुटूर गूँ ' की आवाज़ लगा रहे थे और सब कहीं उनके प्रताप से जी मिचलानेवाली बदबू फैल रही थी । वाह रे नवाब वाजिदअली और वाह री तेरी भूल-भुलैयाँ । मैंने किशोरी-लाल गोस्वामीजी पर बहुतेरा दाँत पीसा और तत्काल प्रतिज्ञा की कि घर जाते ही पहिले परिस्तान के उन सब किस्सों की दाहक्रिया करके फिर जल ग्रहण करूँगा ।

एक जगह दरबान मेरी ओर मूँह फेरकर खड़ा हो गया । मैंने कहा--- ' बस । ' उसने कहा, ' नहीं ' हुजूर ऊपर भी एक मंजिल है ! ' मैंने कहा, ' चलो । ' ऊपर लम्बा चौड़ा खुला हुआ छत था । यदि ऊबड़-खाबड़ न होता तो टेनिस कोर्ट बन सकता था । मैंने आँख गड़ाकर टेनिस कोर्ट की लाइनों का पता लगाने की कोशिश की परन्तु नवाबों को इतनी सूझ कहाँ !

नीचे उतरते हुए मैंने निश्चय कर लिया कि इस बुड्ढे खबीस को एक पैसा भी न दूंगा, चाहे कितना ही झुककर सलाम क्यों न करे । भूल-भुलैयाँ

के सम्बन्ध में मेरी कल्पना को भीषण आघात पहुँचा था। इसका दोष दरवान के माथे पर मढ़ देने में मुझे कुछ संतोष-सा मिल रहा था।

मैं इस प्रकार दरवाज़े से बाहर हो गया जैसे मेरे साथ और कोई है ही नहीं। दस पांच कदम भी न गया होऊँगा कि दरवान ने आवाज़ लगाई, 'हुज़ूर छड़ी भूले जा रहे हैं।' सचमुच छड़ी याद ही नहीं थी। वापस लौटकर मैंने छड़ी के लिये हाथ बढ़ा दिया। उस समय वह बड़े गौर से छड़ी की मूठ देख रहा था। एकाएक सर उठाकर उसने कहा—'हुज़ूर यह छड़ी आपको कहाँ से मिली?'

मैंने कहा, 'क्यों?'

उसने फिर से मूठ पर आँख गड़ाकर कहा—'हुज़ूर इस पर तो शाही ज़माने की मुहर लगी हुई है।'

'क्या?'

'देखिये।'

मूठ पर एक मुकुट की छाप और कुछ अरबी अक्षर खुदे हुए थे। वह मुझे हाल के एक कोने में ले गया। वहाँ नवाब साहब का एक पुराना सिंहासन रखा हुआ था। सिंहासन के पीछे, गद्दी के कुछ ऊपर, एक वैसा ही मुकुट और वैसे ही अरबी के अक्षर खुदे हुए थे। एक रुपये में ऐसी नायाब चीज पा जाने पर मैं मन ही मन प्रसन्न हो उठा। मुझे देने के लिये उसने छड़ी बढ़ाई पर इस नवीन आविष्कार से वह खुद इतना उत्तेजित हो उठा था कि छड़ी उसके हाथ से छूट गई। मैंने ज़मीन से उठाकर देखा कि पक्के फर्श पर गिरने के कारण उसकी मूठ खुल गई है। उसे बैठाने की कोशिश करने लगा। जरा ध्यान से देखने से मालूम हुआ कि मूठ के ऊपरी हिस्से में एक डिबिया बनी हुई है जो कि एक कील के दबाने से खुलती व बन्द होती है। हम लोग उलट-पुलट कर छड़ी की यह अजीब बनावट देखने लगे। छड़ी अन्दर से खोखली थी। खुला हुआ सिरा ज़मीन पर पटका तो भीतर से कागज़ का एक गोल पुलिन्दा टपक पड़ा। कागज पुराना पर मजबूत था। उसमें एक ओर अरबी की कुछ इबारत लिखी हुई थी और दूसरी ओर कुछ नक्शा-सा बना हुआ था। मैंने दरवान से पूछा, 'इसमें

क्या लिखा है, जरा देखो तो।' उसने कहा, 'पढ़ा लिखा होता तो दरवानी क्यों करता, हुजूर। हाँ आप चाहे तो सामने मदरसे में चले जाइये। मौलवी साहब पढ़ देंगे।'

इमामबाड़े के बाहरी फाटक की ऊपरी मंजिल पर एक मदरसा भी है। मैंने कहा, 'बड़े मियां चले न चलो; मैं तो मौलवी साहब को जानता वानता नहीं!'

उसने कहा, 'हुजूर इस वक्त ड्यूटी है। किसी ने शिकायत कर दी तो मुसीबत में पड़ जाऊँगा।'

मैं उस लेख का मतलब जानने के लिये बेचैन हो रहा था। झट से एक रुपया दर्बान के हाथ में रख दिया और कहा—'आओ भी, इस वक्त यहाँ कौन आता-जाता है।'

किसी तरह वह राजी हुआ। मौलवी साहब ने कागज उलट-पुलट कर देखा। बड़ी देर तक सोचते रहे। अन्त में कहा—'इसकी लिखावट क्लिष्ट अरबी ढंग की है। मुझे अरबी में उतना दखल नहीं है। किसी तरह अरबी जानने वाले के पास ले जाइये तो बेहतर हो।' दरवान ने कहा, 'हुजूर तो अजनबी हैं। आप ही किसी मौलवी साहब से पढ़वा लीजियेगा और कल हुजूर को बतला दीजियेगा।'

मैं कागज देने के लिये किसी तरह राजी नहीं था। मैंने कहा मौलवी साहब-मदरसा बंद होने पर चले न चलें।

'बेहतर है।' कहकर उन्होंने फिर लड़कों को रटाना आरम्भ कर दिया। मैं घण्टा-आधा घण्टा वहीं टहलता रहा। स्कूल बन्द हो जाने पर उनके साथ चौक की ओर रवाना हो गया। रास्ते में उनकी चा-पानी हुई जिसका दाम देना मेरे लिये आवश्यक ही था। एक गन्दी सी गली में एक टूटे-फूटे मकान पर जाकर मौलवी साहब ने आवाज लगाई। एक खुर्राट गर्दन हिलाते हुए बाहर निकले। बड़ी अदब तहजीब के साथ दुआ-सलाम हुआ। बाद मतलब की बात अर्ज की गई। चार आने वाला चश्मा नाक पर चढ़ा काँपते हुए हाथों में कागज ले वे इबारत पढ़ने लगे। उनके चेहरे के उतार-चढ़ाव देखकर मुझे निश्चय हो गया कि कोई महत्वपूर्ण भेद खुला चाहता है। अन्त में उन्होंने मुझसे पूछा—, 'जनाब यह कागज आपको कहाँ मिला?' मैंने कहा 'साहब यों ही रास्ता चलते हाथ लग गया।'

'यह गैर मुमकिन है जनाब । इस कागज में एक पुराना राज दर्ज है । जरूर यह किसी नवाबी खान्दान के कब्जे में रहा होगा ।'

मैंने सोचा फेरी वाला, वह काला कौआ क्या सचमुच खान्दानी आदमी था। जरा बिगड़कर मैंने कहा, 'रहा होगा साहब। इस वक्त तो मेरा है। कागज में इस इबारत का मतलब समझना चाहता हूँ । आपको इस काम की कुछ उजरत चाहिये तो फर्माइये वर्ना साफ जवाब दीजिये ।'

' वल्लाह आप तो नाराज हो गये । उजरत है क्या चीज ! इस काम के लिये उजरत ही नहीं, हिस्से की रकम भी देनी पड़ेगी साहब, रकम ।'

' क्या !' मैंने पूछा।

'इस कागज पर एक खजाने का नाम दर्ज है। इमामबाड़े में जिस जगह खजाना गड़ा है उसका नक्शा भी दर्ज है। खुदा की कसम, आप हैं बड़े किस्मतवर।'

हम लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे । खजाना ! अररररर- नवाबी खजाना !! जिसमें एक हीरा एक रियासत की कीमत का हो सकता है। एक बार सर चकरा गया । कुछ होश में आकर मैंने कहा, 'दिल्लगी छोड़िये जनाब और साफ–साफ फर्माइये कि माजरा क्या है !'

'सुभान अल्ला जनाबे वाला, आपने यह दिल्लगी की बस एक ही कही । अजी यह कहिये कि इस वक्त आपका सितारा उरूज पर है जो ऐसी नायाब चीज हाथ लगी और आपकी बदौलत गरीबों को भी नजात का एक रास्ता नजर आया ।'

इसके बाद की बातचीत बहुत गुप्त रीति से हुई। तय यह हुआ कि आधे हिस्से में दोनों मौलवी साहबान और जरूरी समझा जाय तो दरवान शामिल रहें और आधा हिस्सा मेरा हो। दूसरे रोज दरवान को भी इस भेद में शरीक कर खजाना तलाश करने की ठीक रही । बड़े मौलवी साहब को दो रुपया नजर करके और छोटे मौलवी साहब को रास्ते में शर्बत वगैरह पिलाते हुए मैं शुक्ल जी के यहां लौटा । छड़ी सावधानी से सन्दूक में बन्द कर दी और शुक्ल जी के आने पर घूमने चला गया ।

रात ज्यों–त्यों कटी। यह समझ लीजिये कि जितने बार नींद टूटी उतनी

ही रियासतें लुट गई । दूसरे दिन जैसे ही शुक्ल जी दफ्तर रवाना हुए—वैसे ही मैं भी छड़ी घुमाता हुआ चल निकला। मौलवी साहब तशरीफ़ ला चुके थे। एक खोन्चावाला पैसों का तकाज़ा कर रहा था और मौलवी साहब उसे टाल रहे थे। बात बढ़ते हुए देखकर मैंने पैसे ले देकर खोन्चे वाले को चलता फिरता किया और मौलवी साहब के साथ दरवान के पास जा धमका। निहायत नर्म और नफीस उर्दू में मौलवी ने मेरा मतलब पेश किया। पहले तो उसने बड़े हाथ पैर फड़फड़ाए, 'अजी साहब यह इमामबाड़ा तो खजानों का ढेर है। जिस जगह खोदिये, कुछ न कुछ हाथ लग ही जायगा। इसीलिये तो सरकार बड़ा मातबिर आदमी यहाँ तैनात किया करती है। नहीं तो खुल्लमखुल्ला लूट ही न मच जाय। मुझसे अमानत में ख़यानत न होगी' इत्यादि, इत्यादि। परन्तु एक पांच रुपये का नोट हाथ में आते और हिस्से की लालच दिलाते ही दरवान साहब पिघल पड़े। नक्शे के मुताबिक राह दिखाने पर तैयार हो गये। फिर उसी भूल भुलैयां में परिभ्रमण होने लगा। कहाँ तो हम लोग ऊपर की मंजिल पर चढ़े थे, कहां नक्शे के मुताबिक चलते-चलते ठीक उस बड़े हाल के भी नीचे पहुँच गये। मैंने कहा, 'बड़े मियां, कल तो यह जगह नहीं दिखलाई थी।' उसने कहा, 'हुजूर यह जगह सबको दिखलाने की थोड़ी ही है।' अस्तु अंधेरे में कुछ आँखें फाड़ते, कुछ टटोलते हुए हम लोग एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां ज़मीन कुछ गीली सी जान पड़ती थी। दरवान रुक गया। मौलवी साहब ने कहा—'लीजिये जनाब नक्शे के मुताबिक हम लोग अपने मक़सद पर पहुँच गये। अब यहां कुछ खुदाई करनी पड़ेगी।' इसके लिये साबल-फाउड़े की जरूरत थी। यह सलाह तय पाई कि कल दरवान जरूरी सामान यहां पहुँचा दे और हम लोग खुदाई आरम्भ कर दें। साथ ही यह तय हुआ कि जेब में सौ-दो-सौ पड़े रहें। न जाने कैसी जरूरत आ पड़े। पन्द्रह-बीस तो लग ही चुके थे। मैंने सोचा सौ-दो-सौ तो एक ही के देखने का मूल्य होगा। बाहर आकर हम लोगों ने जी भरकर स्वच्छ वायु का सेवन किया। दरवान तो लम्बा-सा सलाम ठोंक कर वहीं रह गया और मौलवी साहब ने चा-पानी का प्रस्ताव पेश कर दिया। पैसे देने पर मालूम हुआ कि मौलवी साहब ने बड़ी बेतकल्लुफी से चा-पान किया है।

इसके बाद कहीं आने जाने को जी न चाहा। सीधे शुक्ल जी के यहाँ जाकर छड़ी सन्दूक में बन्द कर लेट रहा और आज की विचित्र घटनाओं पर विचार करने लगा।

दफ्तर से लौटकर शुक्ल जी ने स्वप्न का मजा किरकिरा कर दिया। हाथ मुँह धोकर ज्यों ही कपड़े बदलने के लिये मैंने सन्दूक खोली कि चाय का प्याला लिये हुए शुक्ल जी उपस्थित हो गये। छड़ी पर नजर पड़ते ही उन्होंने कहा, 'अच्छा मित्र तुम्हें भी यह छड़ी मिल गई।'

मैंने कहा, 'इसके क्या मानी ?'

शु०—किसी नवाबजादे से मिली होगी ? क्यों न ?

मैं०—इसमें हीरे-मोती का काम तो है नहीं जो नवाबजादे ही ऐसी छड़ी रख सकें।

शु०—अच्छा सच कहना कि किसी खजाने-अजाने का भी रंग-ढंग है या नहीं ?

मैं—क्या मजाक कर रहे हो भाई ? यह छड़ी तो मैंने अमीनाबाद पार्क से खरीदी है।

शु०—जरूर खरीदी होगी। तभी तो ताले चाभी के अन्दर बन्द करके रखी है।

मैं—आखिर आपका मतलब क्या है ?

शु०—मेरा मतलब केवल यह है कि लखनऊ में खज़ाने और नवाबजादियाँ ज़रा सस्ती हैं। इनसे बचे रहना।

मैंने हँसकर कहा—'यार फँसनेवाले कोई तुम्हारे समान चोंच होंगे। यहां किसी ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं।

कहने की जरूरत नहीं कि अब दिन में मजे में सो लिया करता हूँ और रात शुक्ल जी के साथ बहुत कुछ देखा-सुना करता हूँ। और भूल-भुलैयाँ की तरफ भूल से भी नहीं जाता।

श्री भदन्त आनंद कौशल्यायन

एक भूली हुई कहानी

श्री भदन्त आनंद् कौशल्यायन

श्री कौशल्यायन जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित, लोकप्रिय, एवं प्रतिनिधि साहित्यकार हैं।

भारतीय संस्कृति और प्राचीन साहित्य के ज्ञाता। बौद्ध साहित्य के पारखी; स्वयं भी बौद्ध मतावलम्बी।

भदन्त जी अपनी स्पष्ट, स्वस्थ और संयत लेखनी के लिये हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हैं। कुशल चित्रकार की भांति भदन्त जी भी भली भांति समझते हैं कि कहां भावों के रंग भरना, कहां स्थान रिक्त छोड़ देना। शरद कालीन नदी के समान उनकी भाव व्यंजना तरल, शान्त और शालीन है। वस्तु-सामग्री को तार-तार समझने के बाद, सुखद मुद्राओं के साथ व्यक्त करना भदन्त जी की अपनी विशेषता है।

निवास स्थान वर्धा। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रमुख कार्यकर्ता। बौद्ध भिक्षु। इकहरा वदन। गेरुए वस्त्र। गौर वर्ण; कुछ अधपके अनार के दानों का रंग लिये। व्यंग-विनोद पूर्ण बातें। हंसमुख स्वभाव। इस कलाकार के पास आने पर प्रतीत होता है, मानो जीवन की यथार्थता के विष को वह अपनी कला द्वारा अमृत बना रहा हो। व्यस्त जीवन; खूब घूमना-फिरना, जैसे पांव में भंवरी हो। भाषण देने की अद्भुत रसवन्ती शक्ति।

आइये, भदन्त जी के पास चलकर उनसे 'एक भूली हुई कहानी' सुनें!

एक भूली हुई कहानी

उसका नाम था निकोलोविच, और उसका नाम था वारिना ।

निकोलोविच् मास्को के एक कारखाने में मजदूर था–ईमानदार मजदूर । सोवियत् संघ के मजदूरों के लिये यह विशेषण अनावाश्यक है, क्योंकि जहां व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं, वहां ईमानदारी और बेईमानी दोनों अपना यथार्थ अर्थ खो बैठती हैं। पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था में कोई क्या खाकर ईमानदार बनेगा ।

निकोलोविच् रोज कारखाने में काम करने जाता और खुश खुश घर लौटता । उसे न छटनी की चिन्ता, न बेकारी की । उसका बचपन सुरक्षित रहा, उसकी जवानी ही नहीं, उसका बुढ़ापा भी सुरक्षित है । वह सारे सोवियत संघ का एक अंग है और सारा सोवियत संघ उसी जैसे बीस करोड़ की रचना ।

निकोलोविच् पढ़-लिख लेता है, किन्तु वारिना अभी तक अनपढ़ है । निकोलोविच् के मित्र ने उसके पास रूसी की पहिली पोथी भेजी है । निकोलोविच् चाहता है कि वारिना पढ़े और वह उसे पढ़ाये, किन्तु वारिना है कि नाक पर मक्खी बैठने नहीं देती । जब कभी निकोलोविच् उससे पढ़ने का आग्रह करता है, वह कहती है–अब हम बूढ़े तोते क्या पढ़ेंगे ।

आज निकोलोविच् ने उसे पुस्तक दी, और पढ़ने का बहुत–बहुत आग्रह किया । उसने पुस्तक ली और उसे जैसे-तैसे तोड़–मरोड़ कर छत में खोंस दिया । वारिना नहीं पढ़ेगी । पढ़ना लड़कों का काम है; वारिना का नहीं ।

किन्तु जब निकोलोविच् काम पर चला जाता है, तो वारिना उसकी गैर–हाजिरी में घर पर बैठी मक्खियां नहीं मारती रहती । वह भी या काम पर जाती है या घर पर ही काम करती रहती है । आज निकोलोविच् काम पर जाते समय उसे अपना कोट मरम्मत करने के लिये दे गया है । वह उसे लिये बैठी है ।

कोट मरम्मत करने से पहले जेबों में हाथ डालकर देख लेना आवश्यक है कि कहीं कुछ है तो नहीं, वैसे ही जैसे धोते समय। निकोलोविच् की जेब में से कुछ नहीं निकला; निकली है एक चिट्ठी।

यह क्या ! इस चिट्ठी में यह खुशबू कैसी आ रही है ? कहीं निकोलोविच् किसी से चिट्ठी पत्री तो नहीं करता है ! हो सकता है कि वह मुझे समझता हो निपट गँवार। यदि मुझे किसी तरह पता लग जाता कि इस चिट्ठी में क्या है तो फिर न हो मैं अपने गाँव ही चली जाती 'किन्तु' आंखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी वह उस चिट्ठी का खाक-पत्थर कुछ भी तो नहीं समझ सकी।

उसने वह चिट्ठी उठाकर रखदी। उसके मन में एक संकल्प पैदा हो गया था।

निकोलोविच् काम से लौटा तो वारिना बोली लो, तुम रोज रोज कहते हो कि पढ़ो, पढ़ो। अब पढ़ाना शुरू करो। मैं पढ़ूंगी।

निकोलोविच् कुछ न समझ सका। उसने अक्षरारंभ करा दिया—आ, बे, व, ग, ड

(रूसी वर्णमाला के आरम्भिक अक्षर)

जब निकोलोविच आता-तो वह उससे अक्षरों को पूछती और चला जाता तो उसी चिट्ठी को निकाल रोज रोज पढ़ने का प्रयत्न करतीं। उसे भाषा तो सीखनी न थी, सीखने थे केवल अक्षर। लिखे हुए अक्षरों को पढ़ने का अभ्यास होने में देर लगी किन्तु एक दिन उसने सारी चिट्ठी पढ़ ही तो ली। चिट्ठी (वह पढ़ने लगी) इस प्रकार थी।

ति..................

प्रिय निकोलोविच

इस पत्र के साथ तुम्हें रूसी की पहिली पोथी भेज रहा हूं। सोवियत–संघ के किसी भी नर–नारी के लिये यह अशोभनीय है कि वह निरक्षर रहे। तुम वारिना को भी जैसे बन पड़े वैसे प्रेरित करना कि वह भी पढ़ना-लिखना सीख ले। आशा है कि

इस पोथी की सहायता से वह शीघ्र और आसानी से रूसी का आरम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लेगी।

तुम्हारा,

कारलौफ'

दारिना ने लज्जा के मारे अपने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लिया।

(एक रूसी कहानी के संस्कार के आधार पर)

श्री नर्मदा प्रसाद खरे

चोरी

श्री नर्मदा प्रसाद खरे

मध्यप्रदेश के लोकप्रिय कवि; जाने-माने कहानी-लेखक । अनेक वर्षों से साहित्य-सेवा और सम्पादन-कार्य में संलग्न ।

खरे जी की कहानियाँ कवि-हृदय की कहानियाँ हैं । अनुभूति-प्रधान हृदय के आंदोलन के परखने में अपेक्षाकृत पटु दृष्टि से सम्पन्न; जीवन के राग-विराग के विविध रंगमय चित्र; युग-ध्वनि के अतिरिक्त, हृदय-ध्वनि की प्रतिध्वनियाँ अधिक स्पष्ट, एवं सूक्ष्म । काव्यमय वातावरण । मीठी भाषा, सुहावने भाव और लुभावनी आत्माभिव्यक्ति ।

खरे जी ने जीवन की पाठशाला में सतत संघर्षों के पाठ पढ़े हैं; विरोधी परिस्थितियों की चट्टानों में नर्मदा की क्षिप्रधार की भाँति वे आगे बढ़ रहे हैं, बढ़ते जा रहे हैं !

मध्यप्रदेश के सबसे पुराने साप्ताहिक 'शुभचिन्तक' सम्पादक, जबलपुर । स्वस्थ, पृथुलकाय । ऊँचा क़द । गौर वर्ण । मोटे फ्रेम का चश्मा । चौड़ा माथा । पीछे को लौटे, अस्तव्यस्त बाल । सादा कुरता और पायजामा । भ्रमण से प्रेम । गद्य से अधिक पद्य से रुचि । हरेक परिचित को हमजोली बना लेने की प्रवृत्ति ।

मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ से सम्पन्न यह 'चोरी' पढ़कर समझें, कि खरे जी जन-मन के परखने में कितने पटु हैं ।

चोरी

जून का महीना और आगरे की गर्मी। सूर्य निकला नहीं कि आग बरसी। पौ फटते ही मन्नू ताज बीबी के रोजे की ओर चल देता। तीन मील चलते चलते दिन हो आता। सूर्य के उजेले में ताज का कोना--कोना हँस पड़ता। देर होते देख, संगमर्मर की चमकदार सीढ़ियां, चिरमौन रहकर भी पुकार उठतीं--'चल, मन्नू चल'

मन्नू झपटकर आगे बढ़ता और मुमताज बेगम की सीढ़ियों के पास जाकर चुप बैठ जाता---जूते की रखवाली के लिये। कोई परदेशी आए और मन्नू दौड़कर उसके जूते अपने हाथ में ले ले और उन्हें धरोहर समझ बैठा रहे, निहारता रहे---तांबे की दो टुकड़ों की आशा पर।

नित्य की भांति मन्नू सबेरे-सबेरे मुमताज की समाधि की सीढ़ियों पर आ बैठा--थका सा, अपने में उलझा-उलझा। रात कुछ खाया नहीं और सारी रात जागता रहा था--चन्दा की चौकसी करता हुआ। चन्दा तपे तवे-सी देह लिये करवटें बदलती रही--घूंट-घूंट पानी पीकर। मन्नू उसे बार बार उठकर पानी देता रहा, हाथ-पैर सहलाता रहा। चन्दा ने कितनी ही बार उससे कहा कि 'सो जा मन्नू, इस तरह कब तक जागेगा?' पर वह नहीं सोया। और अब उसे नींद आ रही है। जी होता, वहीं सीढ़ी पर सिर रख, पैर फैला, एक झपकी ले ले। परन्तु वह तो बार बार आंखें मलता हुआ ताज के प्रवेश द्वार को एकटक निहारता बैठा है---कोई आए, आता दिखे, पर परदेशी...। जमुनी आई नहीं। अच्छा हुआ, नहीं आई। वह अकेला ही पहरेदार है--- जूतों की पहरेदारी करने वाला। उसका हिस्सा बँटानेवाला अभी कोई दूसरा नहीं। जमुनी आई कि वह हारा। जाने क्यों, सब उसी को अपने जूते सौंपते और वह हाथ रखे चुप बैठा देखता रह जाता। भगवान्, आज न आए जमुनी तो.........।

तभी मन्नू ने एकाएक प्रवेश द्वार पर एक पुरुष को स्त्री सहित आते देखा। उन्हें देखते ही उसमें जैसे नए प्राण आए और सुस्ती एकबारगी भाग खड़ी हुई। रोम-रोम प्रसन्न हो, भगवान को आशीष देने लगा। उसे लगा, मानो उस परदेशी के रूप में स्वयं भगवान्

उसकी पुकार सुन भू पर आ उतरे हैं। वह चट अपनी जगह पर खड़ा हो, आंखें गड़ा उन्हें निहारने लगा। जब तक वे पास आएं, तब तक स्वयं दस कदम आगे बढ़ वह उनके पीछे हो गया—जैसे वे नवागन्तुक मन्नू के ही पाहुने हों।

मन्नू ने चमचम चमकने वाले बढ़िया फ्लेक्स शू और एकदम नई मखमली चप्पलें उठा, अपने पास रख लीं—एक निधि समझकर। वे दोनों खिले खिले, खट-खट सीढ़ियां चढ़, प्रेम की अमर विभूति ताज के दर्शन करने अल्हड़पन से आगे बढ़ गए।

लौटने पर मन्नू को रखवाली के दो पैसे मिलेंगे। फिर कोई आया तो और, नहीं तो बस। इस 'बस' का ध्यान आते ही मन्नू का जी तिलमिला उठा और उसके मन में सामने खाट पर पड़ी पीली-पीली चन्दा आ खड़ी हुई। चन्दा का ध्यान आते ही उसके मन में उठने लगा, अभी छै-आठ आने मिल जाएं तो वह इसी क्षण उठकर चल दो चंदा को जाकर देखो चार आने में दो दिन की दवा का प्रबंध करे, बाकी सोलह पैसों में दूध शक्कर, नमक. लकड़ी, आटा, दाल—अपने संसार की सभी जरूरी चीजें खरीद, सब ओर से उन्मुक्त हो पूर्ण रूप से उसकी सेवा में जुट जाए और निश्चिन्त भाव से दिन रात उसके पास बैठा रहे। वह जानता है कि चन्दा हर घड़ी उसे अपने सामने देखना चाहती है और उसके चौबीस घंटे के साथ की उसे सचमुच जरूरत भी है। परन्तु वह उसे भूखी-प्यासी भी तो नहीं देख सकती। जिस चंदा ने चांदी के टुकड़े बेचकर, लगातार सात-आठ साल से उसका पालन-पोषण किया है; प्राणों में परवशता की ज्वाला ले, ओठों से मीठी मुस्कान बिखेर, अपना तथा उसका पेट भरा है; क्या अब वह बड़ा होने पर दुःख, बीमारी के समय भी उसे पेट भर न खिला सकेगा? सब ओर से उपेक्षित चंदा, आंखों में पानी लिए दो घूंट दूध के लिए तरसे और वह उसके सिरहाने बैठा टुकुर-टुकुर देखे? न, यह मन्नू से न होगा। उसने स्वयं कल से कुछ नहीं खाया। पर उसे इसकी चिंता नहीं। अभी वह दो दिन और बिना अन्न-जल के रह सकता है। पर चंदा का तो कंकाल-मात्र ही रह गया है—उठकर खड़ी हो सकी तो ठीक, नहीं तो......। यदि उसे बिना मौत के ही मरना पड़ रहा है, कम-से-कम भूखसे तो तड़प तड़प कर तो न मरे। जो कुछ वह उसके लिए कर सकता है, क्यों न प्राणों के मूल्य पर भी कर गुजरे? उसे छोड़, उसका और है कौन? जब उसके मुंह पर लाली थी, रगों में तेजी थी और देह की हाट रूप-रंग और आकर्षण से भरी थी, तब सभी उसके चाहनेवाले थे, सभी बढ़-चढ़कर उसकी कीमत आंकने आते थे; परन्तु क्या सचमुच कोई उसका बन सका? फिर कौन उसके द्वार पर आता? अब केवल वही

तो उसका है – भाई कह लो तो और बेटा कह लो तो। चन्दा मन्नू की कोई नहीं; पर कोई न होकर भी एक वही उसकी अपनी है। एक दिन जब वह गली-गली जूठे टुकड़े मांगता हुआ, अनजाने उसके द्वार पर आ खड़ा हुआ था, तब उसने ही उसे भर पेट खाने को दे, उसके साथ आदमी के बच्चे-सा बर्ताव किया था, नहीं तो क्या उसे कोई मानव समझता; अपने पास बैठाकर सहज ममता के साथ खिलाता; और फिर एकाएक बीमार हो जाने पर सब कुछ अपने सिर पर उठा, उसे मौत के मुंह से बचाता ? नहीं, कोई नहीं। चन्दा ही एक ऐसी नारी उसे जीवन में मिली थी, उसी के भीतर वह उदार मां जाग रही, थी जिसने बिना कुछ जाने-बूझे अपने बेटे की तरह उसे प्राणों से लगाया और आज तक अनेक आंधी-तूफानों से खेल, सदा उसे अपना सगा बनाए रही।

एक बार , इस मरती बेला, वैद्य जी आकर उसे देख लेते तो...। पर फीस के रुपये, दवाके दाम, खाने पीनेका सामान ये सब बातें मन्नूको कुरेदने लगीं। उसकी आंखोंमें चन्दा के बड़े-बड़े आंसू झूलने लगे। अपनी परवशता पर उसे झुंझलाहट होने लगी और अपने दुर्भाग्य पर स्वयं तरस आने लगा। सहसा उसका मन उन नए जूतों और सुन्दर चप्पलों में जैसे एक खजाना पा गया। पहले तो वह एकबारगी कांपा, झिझका और घबराया। पर दो क्षण बाद ही वह उन मखमली चप्पलों को उठाकर ध्यान से देखने लगा, उनकी कीमत कूतने लगा और उन्हें बेचने-खरीदने की बात भी उसके मन में उठने लगी। मन उन्हें लेकर भाग खड़े होने के लिए अधीर हुआ, पर हाथ आगे न बढ़ते-आगे बढ़ते-बढ़ते-रुक जाते। उसने भीतर ही भीतर साहसी बन, दो-तीन बार उनको उठा-उठाकर देखा, फटी धोती में रुपयों की थैली-सा छिपा कर बांधा; पर जैसे ही उन्हें बांधकर तैयार होता और चारों ओर सशंक हो आंख उठाकर देखता, वैसे ही उसके भीतर का समझदार मन्नू जाग, उन्हें झटपट खोल, फिर ज्यों का त्यों सीढ़ियों के पास जमाकर रख देता और अकारण व्यग्र हो उठता। बहुत देर तक वह इस बांध-छोर के चक्कर में पड़ा हा; उधेड़-बुन में पड़ा न जानें क्या-क्या सोचता रहा। एकाएक उसके हाथों में बिजली दौड़ी, मन में एक विश्वास जागा और उसने जूते–चप्पलें ले भाग खड़े होने का निश्चय किया।

मन्नू तेरह-चौदह सालका अधकचरासा, बड़े-बड़े रूखे बाल और उतरे हुए चेहरेवाला, घिनौना-वा अकिंचन बालक–जूते-चप्पलों की चोरी कर तेजी के साथ प्रवेश द्वार के बाहर निकल, किनारी बाजार की ओर दौड़ा। चोरी कर वह सड़क की ओर भाग रहा है–भागा जा रहा है; परन्तु उसे लग रहा है, मानो कोई उसके पीछे आ रहा हो–उसे धिक्कारता

हुआ, डांटता हुआ, गालियां देता हुआ। पर वह रुका नहीं, रुक नहीं सकता; क्योंकि वह अपने हर कदम के साथ वह आगे बढ़ रहा है–चन्दा के पास। वह भी खाली हाथ नहीं एक खजाना लूटकर–जिससे वैद्य आएगा, दवा होगी दूध तथा फलों का मोल-तोल होगा।

... ...

दिन का पहर है। सूर्य की किरणें आग लेकर धरती पर आ बिछी हैं। मन्नू पसीने में नहाया,फटी धोती में जूतें-चप्पलें छिपाए,अपराधी सा किनारी बाजार में घूम रहा है। हर कोई उसका सौदा खरीदने में हिचकता है, आगा-पीछा करता है। मोल-तोल करने उनका इतिहास पूछता है, जांच-पड़ताल करता है और उसे खाली हाथ ही अपने दरवाजे से लौटा देता है। मन्नू का रंग-ढंग और वेश-भूषा देखने के बाद ही लोगों की दृष्टि फ्लेक्स शू और मखमली चप्पलों पर एक अविश्वाश लेकर ठहरती है, कुछ पल ठहरी रह जाती है और इसके बाद ही उसे उत्तर मिलता है–'न बाबा, हमें नहीं चाहिए।'

अब उसे एक-एक पल एक-एक वर्ष-सा बीत रहा है, अखर रहा है। हर सांस के साथ उसके पैर चन्दा की ओर बढ़ जाना चाहते हैं; परन्तु तो अभी तो वह व्यापारी बना घूम रहा है। मिट्टी के मोल अपना माल बेचना चाहता है, फिर भी कोई खरीदार नहीं मिलता–कोई उस पर विश्वास नहीं करता।

इधर मन्नू तपी दोपहरी में,चोरी का माल बेचनेके लिए मारा-मारा फिर रहा है; गली-गली की धूल छानरहा है और उधर चन्दा–यौवनके शैल-शिखर से उतरी, दीप्तिहीन, सूखी लकड़ी सी नीरस बीमार चन्दा–खाट पर पड़ी कराह रही है। उसका सिर फट रहा है। पेट के भीतर आग सुलग रही है। और एक घूंट पानी पी लेती...। परन्तु आज उसमें इतना बल नहीं। वह खाट पर मौन पड़ी तंग कोठरी की छत को निहार रही है, मानो एक टक निहारती ही रह जायगी। रह-रह कर उसका मन जाने कब से न जलनेवाले चूल्हे, साफ-सुथरे चौके और इने गिने बरतनों में स्थिर हो जैसे कोई प्रश्न पूछने लगता और उसका उत्तर स्वयं उसकी बरसती आंखें देने लगती। सूर्यके उजेलेमें भी अंधेरी रहने सूर्य के उजेले में भी अंधेरी रहने वाली कोठरी की दीवार पर टंगी दो-चार साफ-सुथर साड़ियों और चमकदार कुर्तियों को देखते ही उसके सामने जीवन के पृष्ठ खुल पड़े, नग्न होकर नाचने लगा और सहसा उसकी आंखो तले अंधेरा छा गया। वह फूट फूट रोने लगी। इस समय उसकी हर सांस मन्नू की पुकार करने लगी–'आए तो छाली

लिपट कर, जी भर रो लूं। जाने कहां गया है ? पागल-सा है–कहीं फिर मार खाकर न आए। उसको ठीक से बोलना-चालना भी तो नहीं आता। ऊटपटांग सा है, सनकी-सा, बिना मां बाप का बेचारा लड़का, मेरा सच्चा साथी।

एक दिन सचमुच मार खा कर वह आया था–गाल पर पांचों अंगुलियां उछलीं थीं; परन्तु पूछने पर साफ मुकर गया–पानी का घूंट पीकर रह गया, कुछ बोला नहीं। मेरे लिए उसने सभी कुछ सहा। ऊपर से आग बरस रही है नीचे धरती जल रही है और इस भीषण लू में वह जाने कहां होगा। कल कहीं न जाने दूंगी। वह पास रहे, यही बहुत है पर जाने कैसे न दूंगी ? अभागा खाएगा क्या ?

मन्नू एकदम हताश-सा, एक दूकान की सीढ़ियों से उतर, हाथ में जूते चप्पलें लिए नीचे उतर आया। इसी समय एक अधेड़-से तगड़े व्यक्ति की दृष्टि, जूते और चप्पलों पर गड़, मन्नू पर स्थिर हुई और उसने पूछा–'क्यों रे, बेचता है इन्हें ?'

'हां, बाबूजी !'

'क्या लेगा ?'

'पांच रुपए, और फिर जो आप.......।'

'पांच रुपए, तो बहुत हैं। लाया कहां से और हैं किनके ?'

'मैं,...जी, मेरे बाप ने...।' मन्नू घबरा उठा।

'चोर कहीं का, चल कोतवाली।'

यह सुनते ही मन्नू कांप उठा। एक क्षण उसने कुछ सोचा और जूते चप्पलें फक, प्राण लेकर भागा। बड़ी कठिनाई के बाद तो खरीदार मिला था,पर वह खरीदार जूते खरीदने नहीं उन्हें खोजने निकला था–चोर को पकड़, माल बरामद करने। क्योंकि परदेशी सज्जन ने कोतवाली में, चोरी की रिपोर्ट लिखा दी थी और मन्नू की हुलिया का उल्लेख भी कर दिया था। हवलदार केवल माल पाकर ही सन्तुष्ट न हुआ–उसने दौड़कर मन्नू का पीछा किया।

मन्नू पागल-सा दौड़ता हुआ अपनी कोठरी में पहुंचा। भयभीत सा, चन्दा से लिपट-कर अभी जोर-जोर से रो रहा था कि हवलदार साक्षात् सरकारी कानून-सा वहां

आ धमका। चन्दा को परिस्थिति जानते देर नहीं लगी। उसने मन्नू को छातीसे चिपटा लिया–जैसे कि उसे पूरा का पूरा हृदय में बन्द कर लेना चाहती हो। चन्दा मां नहीं है–मां बन कर करती भी क्या ? परन्तु उसके भीतर की मां अभी मरी नहीं थी। उसने गिड़-गिड़ाकर सारी शक्ति लगा, खाट से उठते हुए कहा–'हवलदार साहब, मन्नू चोर नहीं है। उसने आज तक कभी चोरी नहीं की। मैं मर रही हूं–एक माह से खाट पर पड़ी मौत की बाट जोह रही हूं। और घर में दो दाने भी नहीं है। लड़का है, भूखा होगा। इसलिए मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। हवलदार साहब, छोड़ दो इसे। छोड़ दो, बेचारा.....।'

'चल हट, नहीं तो तुझे भी......।' हवलदार सम्पूरनसिंह ने झटके के साथ, मन्नू का हाथ अपनी ओर खींच और उसे द्वार की ओर ठेलते हुए मिसमिसाकर कहा–'बदमाश, चोर कहीं का, अभी से यह हाल...।'

हवलदार मन्नू की बांह पकड़ बाहर निकला–जैसे बलि-पशु को भेंट चढ़ाने लिए जा रहा हो।

चन्दा द्वार पर आ कांपते पैरों पर खड़ी, अपने आप से कहने लगी 'एक दिन यही सम्पूरन सिंह मुझे अपना सब कुछ देने आया था–मेरे एक इशारे पर अपना सर्वस्व लुटाने। पर आज इतनी भी दया न की। मन्नू को छोड़ देता तो। हाय !' चन्दा कठिनाई से यह कह सकी थी कि मन्नू आंख से ओझल हो गया और वह कच्ची झोपड़ी सी भरभराकर जमीन पर गिर पड़ी।

श्री सत्यनारायण तिवारी, 'ज्योतिर्मय'

मौत का खिलाड़ी

'ज्योतिर्मय'

'ज्योतिर्मय' का पूरा नाम श्री सत्यनारायण तिवारी है ।

'ज्योतिर्मय' मध्यप्रदेश के कथा–साहित्य के प्रतिनिधि , सतर्क एवं संयत लेखक हैं ।

'ज्योतिर्मय' की कहानियां वर्त्तमान युग की राजनीतिक और सामाजिक जीवन की कटु एवं स्पष्ट आलोचना–प्रत्यालोचना हैं । दैनिक जीवन की गहरी यथार्थता का उद्–घाटन, शुद्ध जनवादी दृष्टिकोण की पुष्टि और वास्तविक जीवन–दर्शन इस अलबेले कथाकार की विशेषताएँ हैं ।

उर्दू शब्दों से मिश्रित, प्रखर–प्रवाह सम्पन्न भाषा; भाव–व्यंजना पर कुशल अधिकार; समय के पर्दों के पार झाँकने वाली दृष्टि; विचार–चित्र इतने जगमग, इतने प्रोज्ज्वल, जैसे एक साथ दहकते अंगारों के फूल अपने हजार दलों में खिल उठें हों ।

'ज्योतिर्मय' का निवास स्थान, 'कहने भर' को नागपुर है–किन्तु कहा नहीं जा सकता कि 'रमते जोगी और बहते पानी' के समान जिन्दगी व्यतीत करने वाले 'ज्योतिर्मय' कब, कहां मिल जायँ । कोई क्रम नहीं, कोई स्थिरता नहीं । जीवन पहाड़ी दरिया है, जहां चाहे, बह जाय । हँसमुख मिज़ाज, खूब बातें करने, खूब सिगरेट– चाय की आदत । साधारण कपड़े, छायावादी कवियों जैसे बड़े बड़े बाल, क्लीनशेव, गेहुँआ रंग, और साथ में दो चार हिन्दी अंग्रेजी की पुस्तकें; विदेशी साहित्य में विशेष रुचि । अलमस्त ज्योतिर्मय, वृद्धावस्था के समीप होने पर भी'शुद्ध साहित्यिक' की परम्परा–पूर्ति करते हैं ।

'ज्योतिर्मय' की 'मौत का खिलाड़ी' कहानी, अगले पृष्ठ पर पढ़ें ।

मौत का खिलाड़ी

निसार की मासूम जिन्दगी से मा बाप का साया उठ चुका था; रोटी का टुकड़ा, टाट का बिस्तर, झील की लहरों में मौज से तैरना—बस इतना ही उसे उसे मालूम था! वक्त क्योंकर आता है; कैसे गुजरता, क्या क्या दिखाता है—उसने कभी महसूस नहीं किया। सर्दी में सिकुड़ता सो लेता; धूप में ठंडे हाथ पैरों की झुनझुनी दूर करता। और झील के पानी से अपने मासूम चेहरे, बालों और पैरों में लिपटी बदनसीब काश्मीरी मिट्टी को धो डालता।

वक्त ने उसे अपना सबक सिखाया,— खूब सिखाया——वह सबक उसे खतरों भरे दिनों में काम आया ······ श्रीनगर में ठहरे हुए डाक्टरों को साँपों की जरूरत थी। सांप पकड़ना आसान काम न था; मगर पेट की आग ने सब कुछ कराया। डरते—डरते बिलों में बांस की किमचियाँ डालता; रस्सी के फँदे में उठे हुए फन को फाँस लेता; और मिट्टी के घड़े में किसी तरह भरकर ले आता।······। मौत के साथ इस किस्म की अठखेलियाँ करने पर उसे चाँदी के दो सिक्के नसीब होते; कभी दो चार डबल रोटियों के टुकड़े और जरा सा गोश्त। धीरे धीरे उसकी रगों में दौड़ने वाले खून में नाचती ठंडी लहर ने सताना छोड़ दिया, कंपकपी भी जाती रही;अब वह बड़ेही अंदाज के साथ ज़हरीले से ज़हरीले सांप को अपने काबू में कर लेता था। उसे अपने हुनर पर नाज़ था। दस-पांच कीड़े पकड़ लेना उसके लिये अब नई बात नहीं रह गई थी; मगर तरक्की के साथ आमदनी भी घटने लगी! अठन्नी में एक सांप, दो रुपये में पांच; तीन रुपये में दस!... बाजार में कदम रखते ही मौत का भाव भी घट गया।...कभी कभी उसे अपने हाल पर हँसी आती थी; इस हुनर से चिढ़—सी हो जाती थी।....पिछले हफ्ते में उसने कोई साँप नहीं पकड़ा। गोरे डाक्टर ने झिड़ककर कहा—'वेल, छोकरा! साँप क्यों नहीं लाया!' निसार चुपचाप उसकी शकल की तरफ निहारता रहा! डाक्टर ने पाँच रुपये का नोट उसके सामने फेंककर कहा, 'पाँच सांप लाओ!...कल हम लोग मोटर से जला जायगा!' निसार के हाथों में नोट पर लिखे टेढ़े मेढ़े हर्फ सांप के बच्चों की तरह चीख उठे,'अरे फिर क्या होगा? अरे फिर क्या होगा?' धड़कता मासूम दिल जमीन

आसमान से लिपट कर पूछता 'मैं इन सांपों का क्या करूंगा ? इन्हें कौन खरीदेगा ? ये भूख प्यास और हैरानी क्यों कर पंजे झाड़कर मेरे पीछे पड़े हैं ।' काश्मीर पर हमला हो चुका है । डाक्टर जान छुपाकर भाग जायगा । मगर मेरे लिये कहां पनाह मिलेगी?'... वहचुपचाप ताक रहा था; आंखों से दो गर्म-गर्म कतरे टपककर गालों पर ऐसे बह रहे थे जैसे उसके दिल में सोते हुए दुख दर्द के जहरीले उभार ने सांप की ही मानिन्द रेंगना सीख लिया हो । गर्म आंसुओं को पोंछकर वह सलाम कर जंगल में गायब हो गया ।

o o o

काश्मीर के चमन जहां कल तक बुलबुल का तराना गूंजता था, ओठोंपर मुस्कान खेलती थी, मेहनत और मजूरी की जिन्दगी पर सूरज की आखिरी किरणें मीठी नींद के सुनहले सपने बखेर जाती थीं वहीं बहशी तूफान ने गर्म शीशे की आग उँडेल दी है । जीना हरामकर दिया है ।...इंसान इंसान के खून का प्यासा भेड़िया बनगया है । दीन ईमान के नामपर लाशों के ढेर लगाये जा रहे हैं । लोगों के जिस्म दहशत की बिजलियों से सूख गये । हाथ-पैरों का खून बर्फ हो गया ।...ये अंग्रेज जिन्हें अपनी ताकत पर नाज था, जो डरना नहीं जानते थे, श्रीनगर छोड़ चले ।...कल तक यह ऐशो-इशरत की जिन्दगी ने इन्हें अपने दामन में बांध रखा था; आज इन्हें पलक मारने की फुरसत नहीं है । जंगल का कोना कोना हमलावरों की गलियों से गूँज उठा है ।...पहाड़ी चट्टानों से ये खौफनाक आवाजें ऐसी टकराती थीं, जैसे आसमान फटा जा रहा हो ।....झील का पानी इंसान के धड़कते दिलों की तरह कांप उठता था ।...चारों तरफ मौत ही मौत का शोर ।...

बदनसीब निसार ने जंगल की राह पकड़ी । कदम-कदम पर खतरा जबड़े फाड़े खड़ा था । दरख्त की किस झुरमुट से हमलावर निकलकर अनजाने में ही दबोच ले—यह फैसला नहीं कर पाता था ।...आगे कदम बढ़ाना मुहाल हो रहा था ।...ये जंगल कल तक उसके कदमों का गुलाम था; चप्पा-चप्पा उसे रटे हुए सबक की तरह याद था । वह जानता था कि पत्थर के इस कोने पर बिल है । उससे दस कदम की दूरी पर एक बड़ी सी बांबी है ।...बस वहीं किमची घुसेड़ने पर घास के तिनके जलाने पर सांप मिल जायगा ।... पलक मारते ही वह अपने फुर्तीले हाथों में उन्हें समेट लेगा । मगर दुश्मन की गोली का खौफ मौत से भी ज्यादा संगीन और दहशत पैदा करने वाला होता है ।...उसके थर-थराते कदम आगे बढ़ रहे थे । डूबते सूरज की किरणें चीख रहीं थीं—'जल्दी करो ! जल्दी!!'टेकड़ी पारकर ज्योंही नीचे उतर रहा था, कि पुराना अड्डा नजर आया ।..पिछले

दिनों यहां से तीन चार सांप ले गया था ! ...उसे उम्मीद तो थी ही नहीं । मगर फिरभी किस्मत अजमाने के ख्याल से उसके बिल में किमची डाल दी ! ...जरा सी आन में एक चिढ़ा हुआ नाग बाहर निकल आया ! ...निसार ने शक्ल देखी और धीमे से जरा सा मुस्कराया; मन ही मन बोला,'दोस्त चिढ़ते क्यों हो ?...नींद में खतरा पैदा हो गया? ठहरो मैं अभी तुम्हें मुहब्बत के साथ राजी कर लूंगा !" ओठों से बांसुरी लगाकर एक मीठी सी धुन छेड़ दी।···सांप का ढंग पलक मारते ही तब्दील हो गया ! आतिश की तरह भभकता गुस्सा पलक मारते ही बर्फ हो गया।···निसार के ओठों पर खेलते गीत की धुन पहाड़ी चट्टान से टकराकर पूछती थी।···'ओ मौत के फरिश्ते मेरी झोली में सोने का ख्याल क्या तुझे बेचेन नहीं करता।···तुम्हारी दोस्ती मुझे पहाड़ों मे खींच लाई! चलो दुनिया की सैर करने चलो। ··· आज काश्मीर के दामन में आग के शोलों ने गजब ढा दिया है। लोग भागे जा रहे हैं ! तुम यहां अकेले कैसे रहोगे ? चलो,चलो मेरी अस्तीन में झूला झूलना ! रात भर खाट पर सोना ....! गीत की सुरीली आवाज ने सांप पर एक मंत्र सा डाल दिया ! निसार ने उसे अपनी नाजुक बाहों में प्रेमिका की अलकों की तरह उलझा लिया।··· धीरे से उसने मासूम ओंठसे चूमकर कहा–'बेटा शाम हो गई, चलो चलें।'···

जब निसार तेजी से कदम बढ़ाता हुआ, शहर की तरफ लौट रहा था ··· पहाड़ी दरख्तों के कंगूरे सूरज की आखिरी किरणों की सिन्दूरियेपन में ऐसे डूब रहे थे, जैसे किसी शहीद की लाश पर फैले किसी हुए सुर्ख खून कतरे मौत की तवारीख लिख रहे हों··· और वह भी जुल्मी काश्मीर के तड़पते दिल का खौफनाक अफसाना !

पगडंडी के बाजू से कुछ आवाज सुनाई पड़ी। मुड़कर देख भी न पाया था कि मौत के पैगाम की तरह एक सनसनाती गोली पिंडली को आर पार कर गई ! जमीन पर गिरते गिरते उसने देखा–एक खूंरेज पठान बंदूक लिये उसके तरफ बढ़ रहा है। पैर के दर्द ने उसे बैचेन कर दिया। खुदगर्ज लुटेरे पठान ने नजदीक आकर जेब में हाथ डाला। उसके हाथों में नोट आने के पहिले ही सांप ने उसे पूरी ताकत के साथ डस लिया। दौलत की भूख उसे काश्मीर की घाटियों में खींचकर लाई थी; मगर उसे क्या मालूम था कि यहां के दरख्त, मिट्टी, इंसान ही नहीं–सांप भी बदला लेना जानते हैं। उन्हें दोस्त और दुश्मन को पहचानने का तमीज है; उन्हें गुलामी की बेड़ियां पहिनाना हंसी खेल नहीं है ।

देखते-देखते पठान जमीन पर धम से गिर पड़ा···लूट के सपने खाक में मिल गए; जो कल तक दूसरों को मौत की खाइयों में ढकलने के सपने देखता था, आज उसे कब्र की राहत नसीब न थी—निसार ने खीसे से दुबारा बांसुरी निकाली—उसके ओठों दर्द और मुस्कान तड़प उठे। लहराते स्वर ने कहा— 'मौत के फरिश्ते तुम सच्चे कश्मीरी हो। आजादी के दुश्मन को मौत के घाट उतारने में तुम मुझसे कहीं ज्यादा ताकत रखते हो। तुम्हारी एक चोट ने उसे दोजक की राह दिखा दी। चलो चलें। तुम्हारा लाख – लाख शुक्रिया।

चलते-चलते उसे ख्याल आया।···ये बन्दूक, ये कारतूस जो काश्मीर की मौत पैगाम लेकर आये थे, उन्हें दुश्मन के हाथों से छीन लेना मेरा फर्ज है। एक एक गोली काश्मीरियों के लिये मुसीबत का पैगाम है। पलक मारते ही उसने बन्दूक और कारतूसों पर कब्जा कर लिया।

पैरों का दर्द कदमों को बोझीला बना डालता मगर फतह का ख्याल उसे पागल कर चुका था, शहर में पहुंचते ही वह लोगों को बता देना चाहता था कि मासूम सांप ने भी अपनी आजादी को गंवाना गुनाह समझा। वह अपने जीते जी काश्मीर को गुलाम नहीं देख सकता।···

बाजार में लोगों ने निसार की बातें सुनी, डाक्टर के पास ले गये।···उसने पट्टी बांध दी।···खाट पर पड़े-पड़े उसे ऐसा नजर आ रहा था— जैसे दुश्मन की बन्दूक छीन कर उसने बड़ा काम किया है।···ये शीशे की गोलियां मौत का पैगाम लेकर आई थी, मगर वतन परस्त काश्मीरी के हाथों में पड़ते ही वे बिजली की ताकत बन गईं। जिन उंगलियों से वह सांपों के साथ खेलता रहा है, अब वह अच्छा होते ही उनसे मौत का खेल खेलेगा।···वह दुश्मन से बदला लेगा।···

वतन की आजादी के ख्याल ने उसे मौत का खिलाड़ी बना दिया। नाचीज जिन्दगी में उसे एक जहरीले सांप ने वह सबक सिखाया है, जिसे वह हर्गिज नहीं भूलेगा,—कभी नहीं भूलेगा।··· वह मां के दूध की तरह मीठा, शहादत की तरह पाक, और चमन में खेलती हरियाली की तरह ताजा है।···

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े

प्रतिमा

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े

'ईसाई बाला' उपन्यास को लेकर कथा क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। उसके बाद अनेक कहानियों की रचना की। जेल-जीवन ने दो नये उपन्यासों का निर्माण कराया।

रोमेण्टिक जीवन के प्रति सहज रुझान रखने वाले अनन्त गोपाल जी की लेखनी ने वासंती रंग की सजीव झाँकी उपस्थित की है। सहज गतिशीला भाषा, अभिव्यक्ति में कला-प्रियता और अनुभूतिमयी आत्म-स्वीकृतियाँ।

एक ओर मौलिक कथा-साहित्य की सृजनकारी क्षमता और दूसरी ओर प्रबंध सम्पादक का ऊल जलूल काम–पर दोनों में एक सी लगन, एक सी सफलता।

'नागपुर टाइम्स' के प्रबन्ध-सम्पादक, नागपुर। हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी पर एकसा अधिकार। गौरवर्ण, तरतीब से सँवारे गये सुन्दर केश, आपाद-मस्तक, हंस-पंख-सी श्वेत खद्दर के वस्त्र। ठंड में कंधे पर ऊनी शाल डालने की आदत। बातों में मिश्री का पुट, लोक-व्यवहार में आत्मीयता की छाप। [illegible]इये, हम आपको शेवड़े जी की कथा-कला की 'प्रतिमा' के दर्शन करायें।

प्रतिमा

'ओ री लावण्य की प्रतिमा !' कलाकार सम्पूर्ण सफलता के आनंद से विह्वल हो पुकार उठा। उसकी हर्षातिरेक से विकम्पित आवाज सारे स्टूडियो में गूँज उठी। उसका शरीर सिहर उठा। उसे लगा, मानो आज उसके कदमों पर दुनिया का साम्राज्य टूट पड़ा हो। और ऐसा क्यों न हो ? बरसों से जो साध वह अपने दिल में एक मीठे रहस्य की तरह छिपाए बैठा था, आज वह परिपूर्ण हुई। उसके दिल ने गवाही दी कि बेशक उसकी ज़िन्दगी का सबसे मधुर, सबसे गहन, सबसे पवित्र सपना आज पूरा हुआ--आज जीवन सार्थक हुआ। अब इस क्षण के बाद मरण भी आ जाय, तो वह अमरत्व ही होगा; क्योंकि उसका शरीर भले ही नष्ट हो जाय, वह स्वयं इस कला-वस्तु के रूप में शाश्वत् है, चिन्तन है, अविनाशी है। मानव की जन्म–जन्मान्तर की सृजन-क्षुधा मानो इस अप्रतिभ प्रतिभा के रूप में तृप्त हो गई।

वह मूर्तिकार था। मिट्टी या पत्थर को तोड़कर, और फिर मरोड़कर वह मूर्तियां बनाता था–कभी मानव की, कभी अति-मानव की, कभी नारी की, कभी जननी की, कभी दानवों की, कभी देवदूतों की। उसके विशाल संग्रहालय में कतिपय सजीव प्रतिमाएँ विराजमान थीं। कोई कला-ग्राहक उसमें एक बार घुस पड़ा कि बस आत्म–विस्मृत हुआ ही–खोया-सा, भूला-सा, अपने जीवन से ऊपर उठा हुआ, विश्व के जीवन से मिला हुआ, पागल-सा–क्योंकि उस संग्रहालय में उसे दर्शन होते थे भगवान बुद्ध के, जिन्होंने यौवन में ही वैराग्य की दीक्षा ली थी और हरे भरे उद्यान में निर्वाण-वृक्ष का बीज लगाया था। वहाँ दर्शन होते थे हज़रत ईसा के जिनकी सूलीपर टंगते समय की घोर अन्तर्वेदना उनके चेहरे पर इतनी सजीव, इतनी सत्यमय अंकित हो उठी थी, मानो उनकी आर्त्तवाणी ही कानों में गूँज उठी हो–'ऐ मेरे पिता ! तूने मुझे क्यों बिसार दिया ?'

वहां और भी कई मूर्तियां थी–हज़रत मुहम्मद की, जिसे फारस के शाह की एक पुरानी तस्वीर के आधार पर उसने गढ़ा था। कन्फ्यूशियस की, शेक्सपियर की,

मिल्टन की, अब्राहम लिंकन की, नेपोलियन की, कार्ल मार्क्सकी, लेनिन की, आईन्सटाइन की, रवीन्द्रनाथ की, गांधी की। उसमें प्रतिमाएँ थीं बादशाहों की, राजनीतिज्ञों की, किसानों की, लकड़हारों की, मजदूरों की। उसमें मूर्तियां थीं नर्तकी की, विलासिनी की अभिसारिका की, परित्यक्ता की, वेदनामयी विधवा की, गौरवमयी माता की, पावन नारी की। लेकिन उसे स्वयं संतोष न था। उसकी बड़ी शोहरत थी। चारों दिशाओं में उसका खूब यश फैला हुआ था। बड़े-बड़े राजा-महाराजा, धनिक, देश-विदेश के टूरिस्ट उसके यहां आते और एक-एक मूर्ति के लिए हजारों रुपये देने के लिए तैयार रहते। कभी लहर आती, तो वह एकाध मूर्ति दे देता, वरना अकसर कह देता–' अभी नहीं। अभी और काम बाकी है। मेरा दिल अभी भरा नहीं है।'

और वे अपूर्ण मूर्त्तियाँ बरसों वैसी पड़ी रहतीं और उनका काम वैसे ही बकाया पड़ा रहता। हाँ, अगर वह कोई मूर्ति दे देता, तो उसका खरीदनेवाला एकदम हरा हो जाता, अपने भाग्यपर फूला न समाता। खुशी-खुशी वह नोटों का पुलिन्दा दे जाता, जिसे मूर्त्तिकार कभी हाथ से न छूता। सामने की छोटी-सी गोल मेज पर वे नोटों या रुपयों की ढेरियाँ वैसी ही पड़ी रहतीं। जब उसकी ईसाई नौकरानी नीना आती, तब वह उन्हें बटोरकर ले जाती, अन्दर जाकर बक्स में रख देती और चाबियां अपनी साड़ी के छोर में बाँध लेती। वह नौकरानी क्या थी, उस मूर्त्तिकार की नर्स थी, अभिभाविका थी, खाना बनाने वाली तथा घर सँभालनेवाली थी, बहन थी, माता थी। उसकी माँ बंगाली कायस्थ थी, किन्तु बाद में वह ईसाई हो गई थी।

वह नौकरानी बहुत ही भली औरत है। कुछ पढ़ी-लिखी भी है और देखने में साधारणतया अच्छी है। लेकिन इन सबसे बढ़कर जो बात है, वह यह कि उसका हृदय अत्यन्त सुन्दर है। उस मूर्त्तिकार को जितना वह समझ सकी है, उतना और कोई समझ पाया है। जबसे उसने अपना स्टूडियो खोला है, तबसे वह बराबर उसके साथ है, और उसने पक्का इरादा कर लिया है कि वह जिन्दगी भर उसका साथ देगी। कलाकार भी उसके कारण अत्यन्त सुखी है। नीना के रहते हुए उसे कोई तकलीफ नहीं––न खाने की, न पीने की, न कपड़े पहनने की, न ओढ़ने-सोने की, न सेहत की, न दवाई पीने की और न हिसाब-खर्च सँभालने की। समय पर वह उसे नाश्ता करा देती है। उसे क्या भाता है, उसकी तबीयत के लिए क्या मुफीद है, यह सब वह जानती है। वक्त पर कपड़े बदलवा देती है, मैले कपड़े धुलवा देती है, फटे कपड़े दुरुस्त कर देती है, ठंड के वक्त उसका

ओवर-कोट ला देती है, काम के वक्त चुपचाप काफी का ट्रे लाकर रख देती है, बीमारी में परिचर्या करती है और पाई-पाई का हिसाब रखती है—गोया वह उसके लिये सब-कुछ है ।

कलाकार उस पर अपना सारा भार छोड़कर एकदम निश्चिन्त है । उसका अन्तर्मन नीना के अस्तित्व को एकदम जान लेता है । वह कमरे में आई है या नहीं, यह वह फौरन समझ लेता है । वह उस पर एकदम अवलम्बित है, पूरी तरह आश्रित है । वह न रहे, तो कलाकार भूखा ही बैठा रहे । बिस्तर पर पड़ा है, तो पड़ा ही रहे । कभी कपड़े नहीं बदलेगा, उठकर काफी बनाकर नहीं पिएगा, कुछ नहीं करेगा । एक बार नीना एक दिन की छुट्टी पर रही, तो उस कलाकार ने २४ घण्टे बिस्तर पर ही गुज़ार दिए । न खाना खाया, न पानी पिया और न अपना पलँग ही छोड़ा । अजीब हालत थी उसकी ।

नीना उसे खूब समझे हुए है और वह नीना को । जब नीना पास होती है, तो वह उसके बारे में कुछ नहीं सोचता है; किन्तु जब वह दूर होती है, तो उसी के बारे में सतत सोचता रहता है । फिर भी इस सतत सोचने के मानी क्या हैं, यह नीना नहीं जानती है । जो जानती है, उससे उसे सन्तोष नहीं है । इतना सब पा चुकने के बाद भी नीना को सम्पूर्ण सुख नहीं है । उसके दिल में कोई कशिश है, जीवन में कोई कमी है, जिसके कारण वह अपने-आपको हमेशा अपूर्ण-अपूर्ण-सा पाती है । वह जानती है कि यद्यपि वह इस नरश्रेष्ठ कलाकार की अभिभाविका है, बहन है, माँ है; किन्तु वह नहीं है, जो नारी का चरम सुख है, जो नारी के जीवन की फलश्रुति है । वह कलाकार की प्रेयसी नहीं है, प्रेम-पात्र नहीं है—हल्के और ओछे मानी में प्रेयसी नहीं, सबसे गम्भीर, सबसे गहरे और सबसे पुनीत अर्थ में । किन्तु वह वह नहीं है, इसका उसे इल्म है और इसीलिए इतना सब पाकर भी उसके जीवन में एक सूक्ष्म उदासी छाई रहती है, जैसे उसने कुछ पाया ही नहीं । वह भली-भांति जानती है कि कलाकार किसी नारी के प्रेम का दीवाना नहीं है और शायद कभी होगा भी नहीं । वह दीवाना है, तो अपनी कला का ।

और नीना पागल है कलाकार के पीछे । नीना को कई ऐसे मीठे क्षण याद हैं, जब उस सुन्दर कलाकार की काली, बड़ी-बड़ी, स्वप्निल आंखों ने उसकी आंखों की आत्मा की ओर अत्यन्त एकाग्रता से, अत्यन्त आत्मीयता से निहारा है । उन दिव्य क्षणों में उसका सारा शरीर कम्पित हो उठा है । काश, वे क्षण-अमर

हो जायँ और उस दृष्टि-निक्षेप का मन्तव्य ठीक वही हो, जिसके लिए उसके—नीना के—व्यक्तित्व का रोम-रोम लालायित है ! किन्तु नीना को पूरा विश्वास है कि कलाकार की विलोभनीय आंखें उस नीना नाम की नारी-विशेष के हृदय की थाह नहीं ले रही हैं; बल्कि संपूर्ण, अ-विशेष नारी–जाति के चरम सत्य को, नारी में समाहित कला-तत्व को अवगाहन करने का प्रयत्न कर रही हैं, जिसमें नीना हजारों–लाखों–करोड़ों नारियों में से एक है, एकमात्र नहीं। फिर भी वह कृतज्ञ है कि वह जो पा रही है, वही क्या कम है ? जो नहीं पा सकी है और जो शायद दुनिया की कोई भी नारी नहीं पा सकेगी, उसके दुख में क्या वह जो पा चुकी है, उसके महत्व को, उसके सुख को घटने देगी ?

इस तरह नीना और कलाकार ज़िंदगीकी राहपर साथ-ही–साथ चले जा रहे हैं–इतने क़रीब, फिर भी इतनी दूर! जहाँ नीना के दिल में यह महत्वाकांक्षा है कि वह उस कलाकार को पा सके, वहां उस कलाकार के दिल में एक ऐसी दुर्दम्य महत्वाकांक्षा है कि वह मातृ-जाति के प्रतीक के रूप में नारी की एक ऐसी प्रतिमा बनाए, जो साक्षात् कलाकी प्रतिमूर्ति हो । उसके जीवन की सबसे बड़ी साध, सबसे बड़ा स्वप्न, सब-कुछ बस यही महत्वाकांक्षा थी । उस कल्पना की प्रतिमा की उसने न-जाने कितने घन्टों, कितनी रातों, कितने बरसों तक एकाग्र पूजा की है। न–जाने कितनी जाग्रत और अजाग्रत घड़ियां उसकी एकान्त–साधनामें बिताई हैं। बस, यह हो जाय, तो फिर कुछ होने को बाकी न रहे । उसका निर्माण होने के बाद फिर उसका मरण हो जाय, तब भी उसे चिन्ता नहीं । वह मूर्ति उसे मृत्यु को जीतकर भी अमर्त्य बना देगी, ऐसी उसकी निष्ठा है । इसी एक धुनमें वह दीवाना बना फिरता है !

इसीलिए जब उसकी इस आदर्श ध्येय–मूर्तिका निर्माण हो चुका और बरसों की तपस्या सफल हुई, जब कल्पना का एक–एक तत्व कलाका सजीव सत्य बन उठा, तब इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वह आनन्द–विभोर होकर पागल की तरह पुकार उठा–' ओरी लावण्य की प्रतिमा !'

उसके बाल बिखरे हुए थे, कपड़े बे-परवाह बदनपर लटके हुए थे उसके फर–राउन के बटन उल्टे–सीधे लगे हुए थे और बावजूद इसके क बाहर कड़ाकेकी सर्दी पड़ रही थी और कहीं-कहीं हिम-वर्षा भी हो रही थी, कलाकार का शरीर पसीने से तर था। दाहिने हाथ की उँगली उस

प्रतिमा के सुन्दरतम चेहरे पर गड़ाकर वह देखता खड़ा रहा–बस, देखता ही रहा। आँखों में था परम सुख का भाव, परम संतोष, परम समाधान और परम सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब ! 'ओ री लावण्य की प्रतिमा !'––उसकी आनन्द-विह्वल पुकार सुनकर नीना दौड़ी-दौड़ी आई। वह भी मन्त्र-मुग्ध सर्प की तरह देखती ही रह गई––उस प्रतिमा को और उससे भी ज्यादा उसके निर्माता को !

क्रमशः निशा-रानी आई। स्टूडियो बिजली की बत्तियों से जगमगा उठा। फिर भी कलाकार की आनन्द-समाधि में कोई परिवर्तन नहीं आया। वह प्रतिमा को देखता ही रहा। नीना ने पीछे से काफी और मक्खन-टोस्ट का ट्रे लाकर रख दिया। खाने की रकाबी रखी, ओढ़ने के लिए पश्मीने का शाल लाकर रख दिया। लेकिन उसकी समाधि नहीं टूटी। रात आगे बढ़ती गई। नीना घर का सारा काम–काजकर तथा अन्दर के सारे दरवाजे लगाकर चली गई। जाते–जाते उसने स्टूडियो में झांका, तो पाया कि कलाकार के भावावेग में कोई फ़र्क नहीं-वह सुबह जल्दी आने का इरादाकर, एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर, चली गई।

और कलाकार अपनी स्वनिर्मित लावण्य-मूर्ति को बुभुक्षित आंखों से पी रहा है। ओफ़ ! लावण्य की मूर्ति ! उसकी विशाल, सुन्दर, भाव-भीनी आँखें, मोहक भाल-प्रदेश, कोमल कपोल, नाजुक ओंठ, लुभावनी ग्रीवा, बड़े-बड़े स्तन और भरे हुए नितम्ब ! वह नारी के चरम सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी। उसके स्वप्नों की सुन्दरी सजीव होकर ही पृथ्वी-लोक में उतर आई थी। क्या वह उसकी जाया थी या प्रेयसी या माता ?

कुछ भी हो, किन्तु उस नग्न प्रतिमा के लावण्य में इतनी अपूर्व शुचिता थी, इतनी पावनता थी, जैसे साक्षात् देवत्व ही साकार होकर उतर आया हो ! कलाकार उसकी ओर पागल बना निहारता ही रहा––मानो वह सजीव नारी है, जिससे वह मूक वार्तालाप कर रहा है, उसे जन्म जन्म की संचित बातें बतला–रहा है।

बाहर हिम-वर्षा हो रही थी। तापमापक-यन्त्र का पारा उतरकर शून्य की तरफ बढ़ा जा रहा था। इतने में एक सर्द हवा का झोंका आया। कलाकार ने अनुभव किया, जैसे उसे बर्फ आकर काट गई हो। उसका सारा शरीर कम्पित हो उठा। किन्तु इससे भी अधिक तीव्रता से उसने अनुभव किया कि उस अत्यन्त शीत, बर्फीली

हवा के झोंके से वह नग्न प्रतिमा भी सिहर उठी है, विकम्पित हो उठी है। उसका हृदय तीखी वेदना से द्रवित हो उठा। कोई पैनी वस्तु गहराई तक जाकर उसके नाज़ुक दिल को छू उठी—ओह !

दूसरे दिन तड़के नीना आई। भागी-भागी स्टूडियो की तरफ गई। देखा, सारी बत्तियां ज्यों-की-त्यों जल रही हैं और कलाकार जिस जगह खड़ा था, वहीं लुढ़ककर गठरी बना पड़ा है। उसका ओवर-कोट उस नग्न प्रतिमा के बदन पर ओढ़ाया हुआ है और उसपर पश्मीने की चादर लपेटी गई है।

नीना ने घबराकर कलाकार के खुले बदन को टटोला। देखा कि वह बर्फ की तरह ठण्डा है। दिल की धड़कन और नाड़ी बन्द हैं। नीना जहां की तहां पछाड़ खाकर गिर पड़ी। और जाने कैसे उसका सिर कलाकार के पैरों पर बे-अख्तियार जा गिरा।

श्री मधुकर खेर

सहस्त्र दीप जल उठें

श्री मधुकर खेर

समकालीन तरुण कहानीकारों में सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त। प्रान्त की सीमा लाँघकर मधुकर जी की कीर्ति भारतीय क्षितिज का चुम्बन कर रही है।

सुप्रसिद्ध मासिक-पत्रों में अबाध गति से लिखते रहते हैं। जन-मन में निरन्तर धधकने वाली अन्याय और असन्तोष की लपटों से अपनी लेखनी को विरस न रख सकने वाला यह तरुण कलाकार विचारों में अपने को खासा अनुभवी और प्रौढ़ प्रकट करता है। सरल-सीधी भाषा, नित्य-जीवन की सूक्ष्म घटनाओं की पृष्ठभूमि पर आधारित कथानक, निर्झरिणी की अमन्द गति-सा प्रवाह और मर्मस्पर्शी अन्त।

मझौल कद, न अधिक दुबले, न अधिक मोटे, गेहुआँ रंग, प्रशस्त ललाट। माथे के एक ओर लौटे हुए हिटलरी बाल। नपी-तुली बातचीत, विदेशी-पत्रों को रात तक पढ़ने का शौक--लेखन मानों एक व्यसन हो गया है।

मातृभाषा मराठी होते हुए शुद्ध साहित्यिक हिन्दी ही बोलते हैं।

छोटी उम्र में ही जीवन के मीठे-कड़ुए अनुभवों को कहानी का आवरण देने वाले मधुकर जी के 'सहस्त्र दीप जल उठे' कहानी की ज्योति-गंगा में आप भी अवगाहन करें।

सहस्त्र दीप जल उठें

उस सजे-सजाये कमरे में प्रकाश की रंगीन किरणें मुसकराती-सी प्रतीत होती थीं। कमरा बहुमूल्य वस्तुओं द्वारा सजाये जाने से सुन्दर दिखता था। वहाँ के वातावरण को सुगन्ध ने प्रफुल्लित बना दिया था, किन्तु कीमती कालीन पर बिछे पलंग पर लेटी मंजु सिसक रही थी। उसके हृदय में भरी वेदना को बहाने में उसके आँसू भी असमर्थ ही रहे थे। उसे ऐसा अनुभव हुआ, मानो कमरे की सभी चीजें उसके दुर्भाग्य का उपहास कर रही हैं। सुहागरात के दिन उसे रोना पड़ रहा है……सम्भवतः अब जीवन भर उसे रोना पड़ेगा।

मंजु सोच रही थी कि पुरुष कितना स्वार्थी रहता है! उसकी स्वार्थ लिप्सा उसे अंधा बना देती है। वह नकली कांच के टुकड़े की चमक पर उसे हृदय से लगाता है; किन्तु सच्चे हीरे को ठुकरा देता है। जिस दिन इस टुकड़े की चमक मिट जाती है, वह इसे फेंक नये चमकदार टुकड़े की तलाश में निकलता है। मंजु के विचारों ने उसे स्वयं कम्पित कर दिया। उसके पतिदेव भी क्या इसी प्रकृति के हैं? प्रश्न के साथ ही उसका हृदय कहता—'तेरे पतिदेव इससे भी बुरी प्रकृति के हैं।'

मंजु को ध्यान आता कि उसके पतिदेव अभी कुछ ही क्षण पूर्व उसकी उपेक्षा कर बाहर गये हैं। आज पति-पत्नी के प्रथम-मिलन के अवसर पर भी वे अपनी निष्ठुरता का परिचय देने में न चूकें। उसने उन्हें समझाने की चेष्टा की थी, किन्तु उनपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यदि वह मंजु से अप्रसन्न होकर ही गये होते, तो उसे अधिक दुख न होता; किन्तु मंजु ने उनके मुख से आती शराब की दुर्गन्ध का आभास पा लिया था। पत्नी की साँवली सूरत उन्हें नहीं भाई और वे रूठकर चले गये। पहले मंजु को ऐसा लगा, मानो उसका सुहाग उससे रूठकर जा रहा हो; किन्तु दुर्गन्ध का आभास पाते ही वह सोचने लगी कि उसका सुहाग नहीं रूठा है। यह तो मदिरा है, जो उसके पति के बीच एक बड़ी खाई बना रही है। मंजु का हृदय फटा जा रहा था।

एक ज़मींदार की सुशिक्षित कन्या होने पर भी मंजु के हृदय में अभिमान का लेश भी न था। उसकी माता की शिक्षा ने उसके जीवन को प्रभावित किया। माता अपनी पुत्री को आदर्श गृहिणी बनाना चाहती थी। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने पर भी मंजु हिन्दू नारी का आदर्श मानती थी। वह बचपन से ही माता के अनु-शासन में थी। माता उससे रामायण, महाभारत, सावित्री आदि की कथाएँ पढ़वाकर सुनती थी। बच्ची मंजु इन कहानियों को रोचक समझ पढ़ती थी; किन्तु आयु के साथ ही बढ़ती गम्भीरता ने उसे इन पौराणिक कथाओं पर विचार करने की प्रेरणा दी। युवती होने पर उसके हृदय में नारी-सुलभ स्वाभाविक भावनाएँ उत्पन्न होती थीं।

लाला जगजीवनराम मंजु के पिता के घनिष्ठ मित्र थे और मंजु को बहुत चाहते थे। बच्ची मंजु को उन्होंने गोदी में खिलाया था। मंजु भी उनसे हिल-मिल गई थी। उन्होंने अपने इकलौते पुत्र जीवनलाल से मंजु के व्याह की बातें चलाईं और विवाह तय हो गया। मंजु की सखी-सहेलियां उसे छेड़ा करती थीं। वह भी कल्पना के आधार पर अपने भावी पति के विषय में सोचती थी।

जीवनलाल उन व्यक्तियों में था, जो चार कमाकर आठ खर्च करते हैं। इकलौता होने के कारण पिता उसे बहुत प्यार करते थे। माता के न होने के कारण उस पर किसी का शासन न था। बचपन से ही वह बुरी संगत में पड़ गया। संगति का प्रभाव उस पर पड़ने लगा और धीरे-धीरे वह नित्य नई-नई 'बाजियों' से परिचित होने लगा। पिता ने जब यह देखा, तो वे जान गये कि अब बात उनके हाथ में नहीं रही। अपने संस्कारों के अनुसार उन्होंने यही एकमात्र उपाय सोचा कि पुत्र का विवाह कर दें। उन्हें आशा थी कि विवाह के पश्चात् लड़का अपनी जिम्मेदारी अनुभव करेगा और सुधर जायेगा।

सुहागरात को जीवनलाल को कमरे में प्रवेश करते देख मंजु सिहर उठी। उसे रोमांच का अनुभव हुआ और नाड़ियों का रक्त तेजी से बहता जान पड़ा। जीवनलाल का गोरा गठीला बदन, लम्बा चेहरा और घुँघराले बाल आकर्षक थे। घूँघट की आड़ से मंजु उसे देख रही थी। जीवनलाल ने घूँघट हटाया, किन्तु दूसरे ही क्षण ऐसा उछला, मानो सर्प पर पैर पड़ गया हो। उसके नेत्र जलने लगे। चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उसके मुख पर घृणा और तिरस्कार के

भाव उभर आये। मंजु पर मानो बज्र गिर पड़ा। अभी भी उसको नाड़ियों का रक्त तेजी से दौड़ रहा था, किन्तु इस बार वह भय की सिहरन का अनुभव कर रही थी। जीवनलाल अत्यन्त घृणा भरी दृष्टि मंजु पर डाली और दरवाजे की ओर मुँह फेरा। मंजु ने उसके पैर पकड़ लिये, किन्तु उसने ढकेलते हुए कहा—"तुन जैसी कलूटी के साथ बैठकर मुझे अपनी रात बरबाद करनी है।" इन तिरस्कार भरे शब्दों के साथ ही मंजु को जीवनलाल के मुख से आती शराब की दुर्गंध का आभास हुआ।

मंजु पलंग पर कटे वृक्ष की भांति गिर पड़ी। उसे अपने ठुकराये जाने से अधिक दुख पति के पतन का था। भारतीय नारी अपना तिरस्कार सह सकती है; कठोर से कठोर यातनाएँ सह सकती है; भीषण से भीषण प्रहार सह सकती है; किन्तु पति का पतन नहीं देख सकती। वह पीड़ा और संताप की लपटों में झुलनसे लगी। वह सोचने लगी, भगवान ने मनुष्य और मनुष्य के बीच सुन्दर और कुरूप का भेद क्यों बनाया है? क्या इसलिए कि दुनिया सदैव कुरूप से घृणा करती रहे? वह स्वयं तो कुरूप भी न थी; केवल उसका रंग कुछ साँवला था। उसके पति गोरे रंग के थे और वह साँवली। क्या इतनी सी विभिन्नता के कारण पति को उससे घृणा करने का, उसका तिरस्कार करने का अधिकार है? उसकी वेदना, उसकी दबी सिसकियों से बाहर निकलने लगी। सखियों नें उसे पति से प्रथम मिलन में जो बातें कहनें की शिक्षा दी थी; उनका स्मरण उसकी वेदना को और भी बढ़ाने लगा।

कुछ देर की बाद द्वार खुला और मंजु की आशा के विपरित उसके श्वसुर लाला जगजीवनराम ने कमरे में प्रवेश किया। लालाजी अपने सुपुत्र की करतूत का अनुमान लगा चुके थे। उन्होंने स्वयं जीवनलाल को झूमते हुए बाहर जाते देखा था। पहले दिन का यह हाल देख, वे अत्यंत दुखी हुए। मंजु के सिर पर हाथ फेरते हुए प्रेम से उन्होंने कहा—"बेटी, दुखी न हो। वह तो बिलकुल जानवर बन गया है। उसे मनुष्य बनाने के लिए ही तुम्हें लाया हूँ। उसकी हरकतों का बुरा न मानो।"

लालाजी के वात्सल्य भरे शब्दों से मंजू की झिझक मिट गई और वह फूट फूटकर रोने लगी। लालाजी की आंखों से भी आंसू बहने लगे। मंजु और लालाजी की स्थिति एकसी ही थी। मंजु को पति के कुमार्गी होने के का दुःख था और यह भी दुःख था कि लालाजी जैसे पुरुष पर भी भाग्य का वार पड़ता है।

लालाजी पुत्र से प्रायः निराश हो चुके थे। उन्हें यह आशंका हो रही थी कि कहीं मंजु के जीवन की बर्बादी का अभिशाप भी उन पर न पड़े।

मंजु के हृदय में बहुत वेदना थी, किन्तु वह उसे प्रकट न करती थी। वह जानती थी कि उसे दुःखी देख लाजाजी को कष्ट होता है। इस वृद्धावस्था में वह उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती थी। उसके पहिले ही दिन से घर का कार-बार अपने हाथोंमें ले लिया। पहले एक ब्राह्मण रोटी बनाता था, लेकिन अब स्वयं मंजु रोटी बनाने लगी। लालाजी को उसकी बनायी चीजें अत्यन्त स्वादिष्ट लगती थीं। जीवनलाल के प्रति लालाजी का व्यवहार उपेक्षा का रहता था। मंजु उसके प्रति अत्यन्त श्रद्धा की भावना रखती थी और उसे सदैव संतुष्ट रखने की चेष्टा करती थी। जीवनलाल यह देख उसके सम्मुख जाते झेंपता था वह जितना ही उससे बचने की चेष्टा करता था, उतना ही मंजु उसके सम्मुख जाती थी। मंजु स्वयं उससे इधर-उधर की बातें करती। जीवनलाल शराब के नशे में मंजु के साथ किये दुव्यवहार के लिये उससे क्षमा मांगना चाहता था! किन्तु सुहागरात की बातें चलते ही मँजु की बातें टाल देती थी। वह जब-जब पूजा करती, पति के कल्याण की भगवान से प्रार्थना करती थी। उसने आंगन में तुलसी का पौधा लगा दिया था और नित्य सुबह उसमें जल डालती तथा तुलसी माता से पति के कल्याण की कामना करती थी।

जीवनलाल पत्नी के व्यवहार से प्रभावित तो अवश्य होता था; किन्तु उस पर उसके मित्रों का अधिक दबाव था। शाम होते ही उसका हृदय तड़पने लगता और वह कलरिया की ओर चला जाता था। वहां उसके मित्र जाते, फिर वहां से अपने चौक के नियत अड्डों पर जाते थे। जीवनलाल रात को बारह-एक-एक बजे लौटता था और लौटने पर वह मंजु के चौके में अपनी प्रतीक्षा पर बैठा पाता था। खाना खाने की इच्छा न रहने पर भी वह चुपचाप थोड़ा बहुत खा लेता था। उसके शराब पीने की बात ज्ञात होने पर भी मंजु उससे अत्यन्त मधुर व्यवहार करती। पहले जीवनलाल रात को लौटने पर चुपचाप कमरे में जाकर सो जाता था। मंजु यह देखकर अनदेखा कर देती थी।

एक दिन सुबह जब जीवनलाल ने मंजु को वहीं चूल्हे के पास ऊँघते देखा, तो वह आत्म-ग्लानि से भर गया। वह शीघ्र लौटने की चेष्टा भी करता था, लेकिन

उसके मित्र उसे रोक लेते थे। लाला जी ने मंजु के हाथों घर की जमा-पूंजी की चाबी सौंप दी थी। उन्होंने जीवनलाल को खर्च के लिए रुपये देना बन्द कर दिया। इससे जीवनलाल को अपने व्यसन पूरे करने में कठिनाई होने लगी।

मनुष्य अपना पूरा करने में किसी भी प्रकार की नीचता करने में नहीं हिचकिचाता। जीवनलाल को यह ज्ञात था कि घर की तिजोरी की ताली मंजु के पास है। उसने मंजु से आवश्यक कार्य का बहाना बता रुपये मांगे। मंजु बड़ी विचित्र परिस्थिति में पड़ गई। एक तरफ पति का आग्रह था और दूसरी तरफ श्वसुर का उसके प्रति विश्वास। उसने पिता से पाया अपना सोने का नेकलेस पति को दे दिया। जीवनलाल नेकलेस पा प्रसन्न तो हो गया किन्तु ऊपरी मन से आनाकानी करने लगा। वह नेकलेस लेकर चला गया। वह रातभर घर न आया।

सुबह मंजु तुलसी के पौधे में पानी डाल ही रही थी कि एक आदमी जीवनलाल को ताँगे पर लाता दिखाई पड़ा। जीवनलाल बेहोश पड़ा था और उसके कपड़े खून से तर थे। यह दृश्य देख बड़ी कठिनाई से मँजु अपने को मूर्छित होने से रोक सकी। उस आदमी ने बताया कि रात की शराब के नशे में जब जीवनलाल सड़क पर आया, तो एक मोटर से टकरा गया। उसका सिर फट गया था। मंजु ने शीघ्र ही सब प्रबन्ध किया और उसकी परिचर्या में लग गई। लालाजी मंजु पर खीझ रहे थे कि वह स्वयं उस आवारे शराबी के लिए कष्ट न करे। उसे खैराती अस्पताल में भेज दिया जावेगा। मंजु के बहुत चिरौरी करने पर उन्होंने जीवनलाल को घर में रखना स्वीकार किया।

मंजु सब काम छोड़कर जीवनलाल की सेवा करते रहती थी। बार-बार पट्टी बदलना, दवा लगाना सब उसने अपने जिम्मे ले लिया। लालाजी ने यह देख एक नर्स रख ली; पर मंजु स्वयं सब कार्य करती थी। जीवनलाल होश में आ गया था, पर कमजोरी बहुत थी। उसे नर्स द्वारा सारी बातें ज्ञात हो गई। उसके मुख पर पश्चाताप के भाव थे। वह मंजु को देख झेंपता था, पर मंजु उक्त घटना के विषय में एक शब्द भी न बोली। जीवनलाल ने स्वयं प्रतिज्ञा की वह अब कभी शराब नहीं पियेगा। धीरे–धीरे वह अच्छा हो गया।

जीवनलाल में अब परिवर्त्तन होने लगा। उसकी पहले की उच्छृंखलता धीरे-धीरे लुप्त होने लगी। पहले वह भूलकर भी दूकान में न बैठता; पर अब नित्य

दूकान में जाकर बैठता था। शराब पीना छूट गया। वह पहले रात के बारह एक बजे तक लौटता था; पर अब रात के नौ बजे ही लौट आता था। मंजु तथा लालाजी दोनों ही उससे संतुष्ट थे।

एक दिन जीवनलाल अपने मित्रों की बातों में फँस गया। वह रात को शराब पीकर लौटा। मंजु सब समझ गई, पर चुप रही। दूसरे दिन भी जब वह नशे में घर लौटा, तो मंजु को ठेस-सी लगी। अपने परिश्रम पर पानी पड़ते देख, उसका हृदय टूट गया। उसे–कुछ ज्वर आने लगा, पर वह वैसी स्थिति में भी घर का काम करती थी। वह बीमारी अधिक न छिपा सकी। उसके खाट पकड़ते ही लालाजी पागल-से हो गये। जीवनलाल की भी आँखें खुलीं।

डाक्टर ने टाइफाइड बताया। लालाजी दिल खोलकर रुपये खर्च कर रहे थे। उन्हें इतना अधिक चिन्तित पहले किसी ने नहीं देखा था। उनकी मानो कमर टूट गई। वे बाहर का सब काम करते थे; किन्तु भीतर जाने का उनका साहस न होता था। वे उन आदमियों में से थे, जो स्वयं रोगी से अधिक घबराते हैं। वे भीतर जाते ही मंजु की हालत देख रो पड़ते थे। मंजु के पास जीवनलाल सदैव बैठा रहता था। रात को नर्स को नींद आ जाती थी; किन्तु जीवनलाल लगा-तार जागता रहता था। सब उसे इतना अधिक परिश्रम करने से रोकते थे, पर वह अपने हृदय में अपने आपको ही मंजु की बीमारी का वास्तविक अपराधी समझता था।

उस दिन लक्ष्मी–पूजन था। सर्वत्र आनन्द छाया था। लालाजी का घर बहुत सजाया गया था। मंजु ठीक हो गई थी। केवल कुछ कमजोरी रह गई थी। लालाजी कहते थे–"मेरे घर की लक्ष्मी जाग उठी है।"

उसी दिन रात को जीवनलाल ने मंजु से कहा–"मंजु रानी, तुमने, मुझे पशु से मनुष्य बना दिया। मुझे क्षमा करो।" उसका गला भर आया और आँखें डबडबा गईं। उसने किसी प्रकार कहा–"आज सबने लक्ष्मी की पूजा की, पर मैं तो तुम्हारी पूजा करूंगा। तुम्हीं मेरी लक्ष्मी हो। यदि पहले ही दिन तुम्हारे पवित्र हृदय की झाँकी पा जाते तो······।"

मंजु ने पहली बार हँसते हुए कहा–"किन्तु मैं तो साँवली हूँ।"

जीवनलाल ने कहा—" रानी, मुझे मेरा कलंकित जीवन याद न दिलाओ। तुम्हारा चेहरा सांवला है, किंतु हृदय...हृदय...।" भरा गला होने के कारण उसने कुछ न कह, मंजु को अपने वक्ष से लगा लिया। आज दोनों के चेहरे जगमगा रहे थे।

बाहर कोई मधुर स्वर में गा रहा था—"सहस्त्र दीप जल उठे...।"

श्री नरेन्द्र

पुन्ना की दुकान

श्री नरेन्द्र

नई आशा, नई प्रतिभा । ………………

पूरा नाम देविनेनी विश्वनाथराव। 'नरेन्द्र' उपनाम। मद्रास प्रान्त का यह नवयुवक मध्यप्रान्त के कथाकारों में आज बड़ी आंखों के साथ देखा जा रहा है।

कहानी और उपन्यास लिखना ही ध्येय। यथार्थ जीवन के चित्र उतारना ही साहित्य-सृजन का उद्देश्य। कला कला के लिये नहीं, कला जीवन के लिये। उर्दू कथा-साहित्य के युग प्रवर्त्तक कलाकार 'कृशनचन्दर' से प्रभावित ।

नरेन्द्र की लेखनी में जागती हुई किरणों का जोश है; उनके विचारों का कारवां नई राहें खोजने को बेताब है। उर्दू की भावाभिव्यन्जना को अपनाना उन्हें अधिक प्रिय है।

निवास स्थान जबलपुर। नवयुवक। स्वस्थ शरीर । गेहुंआं रंग। अत्याधिक खुलता हुआ ललाट। तीव्र नासिका। छोटी, भावभरी आंखें । अभिनय कला से विशेष रुचि। भारतीय साहित्य से कहीं अधिक विदेशी साहित्य की ओर रुझान। मनमौजी स्वभाव; विचारों से जनवादी। पुरातन से चिढ़, नवीन से प्यार।

नई आशा नई प्रतिभा, ये भविष्य से भरी 'पुन्ना की दुकान' अगले पृष्ठ पर आपकी राह देख रही है।

पुन्ना की दुकान

उस मुहल्ले की अंतिम दुकान थी पुन्ना की। वह मुहल्ले का अंतिम मकान भी था। सामने कोलतार की चिकनी सड़क थी, जिसके दाएं बाजू में इमली के घने २ वृक्ष कतार बनाए दूर तक चले गए थे। शाम के बाद ही कोलतार के रंग का निखार पुन्ना की दुकान के आसपास फैलने लगता था; क्योंकि पुन्ना की दुकान के कोई पचास गज आगे बिजली का अंतिम खंभा था, और दुकान अंधेरे के घेरे में आ गई थी। अंधेरी रातों में तो ऐसा लगता, जैसे उस खंभे के आगे जमीन ही नहीं है; काली काली गहरी खाइयां हैं। इसलिए राह-गीरों को इससे अवश्य कष्ट होता, कुछ भय सा लगता। लेकिन पुन्ना और उसके पास पड़ोसी इससे अभ्यस्त इस परिवर्तन में कोई विशेष अंतर नहीं पाते थे। विशेष कर पुन्ना बिलकुल निश्चित रहा आता, वह अपनी दुकान में एक छोटा सा मीठे तेल का दिया जला लेता, उसका काम बड़ी सरलता से चलता रहता था। इसी समय उसके दो-चार साथी नियमित रूप से पहुंच जाया करते; और गप्पें आरंभ हो जातीं। इस समय पान, तेल, नोन की दुकान किसी चौपाले की शक्ल में बदल जाती जहां साथियों की गप्पें सब के दिल जो गुद-गुदा देती तो बस हंसी बिखर जाती। और पुन्ना की दुकान मुहल्ले की आखिरी दुकान भी थी; उसके आगे कोई मुहल्ला भी नहीं था। दूर दूर बाईं ओर मैदान और पहाड़ियां, जिन पहाड़ियों की खोह में टीलों की ओट लेकर पहाड़ी हवा से बचने के लिए छोटे छोटे झोपड़े बना लिए गए थे। इन झोपड़ों में रात सोया करती थी; हां कभी कभी सर्द हवा की कड़वाहट से रात की तरह मौन रहने वालों का हृदय हिल उठता था··· दूर पहाड़ों पर उन मजदूरों की खांसी की खों···खों···पुन्ना की दुकान पर पहुंच जाया करती। और पुन्ना का कोई न कोई साथी लापरवाही से कटाक्ष कर दिया करता; 'साले बड़ी तेज चिलम खींचते हैं।' फिर बातों का रुख बदल जाता। पहाड़ियों पर करीब आठ-दस झोपड़े थे, और हर झोपड़े में चार-चार पांच-पांच प्राणी वास करते थे। और ये जो आठ-दस झोपड़ों का गिरोह था, यह केवल अकेला नहीं था ; यह केवल पुन्ना की दुकान वाली दिशा का गिरोह था; और दूर दूर सारे कटंगा की पहाड़ियों में ऐसे तीन चार गिरोह थे। ये लोग दिन भर सुरंग लगाते; फिर टूटी हुई चट्टानों

को ढोकों और गिटि्टयों में बदलते; बस यही सीधा सादा सा पेशा; जिसमें सामूहिक कुटुंब भिड़ा रहता । इस काम में लगे लगे अब ये बूढ़े हो चले थे; खों···खों···खांसने लगे थे; और रात की नाईं खामोश बन गए थे । इनका सारा जीवन कटंगा के विस्तृत मैदान और पहाड़ियों पर ही बीता था, ये कभी शिशु थे तबसे इनकी चर्या औरविद्या अपनेही ढंग की थी । नंगे नन्हें-नन्हें हाथों से गिट्टियों को उठा उठा कर ढेर में इकट्टा किया करते थे । मैदानों से सूखी सूखी टहनियां इकट्ठी कर झोपड़े के आगे ला रखते या फिर मौसम में झुलसी दोपहरिया में कटीली बेरी की झाड़ियों पर गिटि्टयों की बारिश किया करते । पिटते, लात घूंसे, गाली गलौच की झरी सहते, फिर गिटि्टयां बटोरते, बाद में गिटि्टयां बनाने लगते; ढोकों पर छेनी चलाते, चिलम खींचते; धुआं उड़ाते हुए हजम करते सुरंग लगाने लग जाते; और अपना पूर्व कालीन कार्य अपनी संतानों की विरासत में दे देते । जिन्दगी का यह क्रम सदियों से इन मेहनतकशों के गिरोह में चला-चल रहा था । बस बढ़ने के नाम पर ये एक पहाड़ को मैदान की सतह में लाकर दूसरे पहाड़ की ओर बढ़ जाया करते थे । इस प्रकार मुश्किल से इन पिछले पचास सालों में सौ गज से आगे बढ़ सके थे; क्योंकि पिछले दोनों पहाड़ बड़े कसाले वाले पड़ गए थे जो जमीन के ऊपर कम, लेकिन जमीन के अंदर बड़ी गहराई तक धंसे हुए थे । जिनका निकालना आवश्यक था किन्तु जिन्हें निकालने में दुहरी और तेहरी मेहनत लगती थी । जहां इस समय पुन्ना की दुकान है, वहां भी इसी किस्म का पहाड़ था और उन दिनों आज खों खों ...तार तार खांसने वाले केवल अपने नन्हें नन्हें हाथों से गिटि्टयां ढोया करते थे । तब से ये पुन्ना की दुकान को जानते थे । और वे दुकान में लगे गिट्टी और ढोकों तक को पहचानते हैं; उस समय पुन्ना मालूम नहीं कहां और क्या था, लेकिन ये लोग पुन्ना को ऐसे संबोधित करते हैं; जैसे वे वर्षों से उन्हें देखते आए हैं । यद्यपि पुन्ना युवक है, बिलकुल जवान हैं; और यह दुकान आज जो ठोस दीवारों की बनी है, उस समय कच्ची मिट्टी की छोटी सी थी और किसी के जरिये चलाई जाती थी; तब भी ये लोग इस चलाने वाले को सेठनाम से संबोधित किया करते थे; और अपनी आवश्यकताओं की चीजें खरीद ले जाया करते थे । धीरे धीरे उनका फासला बढ़ता गया, और वे आगे मैदानों और पहाड़ियों की ओर बढते गए; लेकिन साथ ही साथ दूकान की रूप रेखा भी बदलती गई; उसके सेठ बदलते गए और वह पक्की दीवारों वाली दूकान बन गई; इस दूकान हर सेठ दस बारह साल बाद शहर की ओर बढ़जाता; अपना कारोबार फैला और इस दूकान में नया सेठ आ जाता ? इसलिये समय के साथ ये पुराने ग्राहक खों...खों खों खांसते खांसते बूढ़े हो चले थे, लेकिन दूकान चमकदार बन गई थी । और सेठ भी

युवक दिखलाई देते थे। ये सब सेठ कहा करते और मौके बे मौके पहुंच कर अपनी जरूरत की चीजें ले जाया करते। पुन्ना की दूकान ही इनकी 'गुरंदी' थी; बस कोई जरूरत सामने आई और कोई न कोई सदस्य कोई मैले से कपड़े को हाथ में लिए पहुंचा, ऐ सेठ ? यद्यपि यह छोटी सी तीन गजी दूकान थी, फिर भी उसमें इन लोगों की आवश्यकताओं का ईंधन भरा हुआ था। पुन्ना इनकी आवश्यकताओं से भली भांति परिचित था; और भूले से ही वह किसी वस्तु की मांग पर नाहीं करता; हां वस्तु खत्म हो जाने और बात थी; अन्यथा वह अभाव को खटकने न देता। यह बात वह यहां के पुराने सेठ से सीख चुका था; और इसीलिये दूसरे सेठों के आकर्षण इन लोगों को पुन्ना की दूकान से विचलित न कर सके थे।

इस प्रकार अपने इनेगिने ग्राहकों के मध्य पुन्ना मजे की दूकानदारी चलाये जा रहा था। दूकान के सामने जो चिकनी कोलतार की सड़क गई थी वह सीधी सीधी दूर तक निकल गई थी; आगे काफी दूर निकल कर वह कई हिस्सों में बँट गई थी; क्योंकि वह संपूर्ण फौजी इलाका था; इसलिये वहां मौत का सन्नाटा रहा करता। बहुधा इस इस रास्ते पर से जाने वालों के कीलदार बूटों की तेज कट....कट....ध्वनि होती; यदि वह स्वर दूकान की ओर बढ़ता सा लगता तो स्वभावतः पुन्ना पान लपेटने लग जाता; क्योंकि इन फौजी आदमियों को बड़ी जल्दी पड़ी रहती, ये आते और जल्दी करो ? कहने लग जाते; और पुन्ना जानता था कि ये तीसरी चीज का नाम भी नहीं जानते हैं; बस सिगरेट या फिर पान ? और वे लेते हुए पुनः सरपट कट...कट...करते हुए उस कोलतार की चिकनी सड़क पर चलने लगते।

इसके बाद पुन्ना की दुकान के पीछे एक मोहल्ला भी था; जिसमें प्रधानतः दो-ढाई रुपये वाले दो दो कमरे के क्वाटर थे। इसमें कारखाने, दफ्तरों में काम करने वाले निम्न मध्यम श्रेणी के वर्ग के लोग प्रधानतः बसे हुए थे। जिनकी भी अनेक आवश्यकताएँ इसी दूकान से पूरी होती थीं; जो यह बहुत चाहते थे कि पुन्ना की दूकान को छोड़कर वे किसी बड़ी दूकान से अपनी आवश्यकता की सारी चीजें खरीदा करें; दिन के प्रकाश में बड़ी गहराई और गंभीरता से ये विचार करते, और काम किया करते थे; दिन ढलते ढलते विचार भी मैले कपड़ों की तरह गंदे हो जाते थे; और इन्हें लाचार होकर उन्हें उतार कर रख देना पड़ता था; अपना काम खत्म करके ये एक ऐसी जगह इकट्ठा होते जहां से लौटते लौटते इनके कदमों में लड़खड़ाहट आ जाती; इनका स्वर लापरवाह, बोझिल हो जाता और ये आड़े आड़े तिरछे तिरछे चलते; अपने आसपास के वातावरण

को ताड़ी और महुए के रंग में तर किए चलते थे। झूमते-झामते; भींगी काली रात में दूर ही से इनका स्वर इनके आगमन की सूचना दे देता। पुन्नाकी दूकान के सामने निश्चित पान चबाते हुए साथी खड़े खड़े इंतजार करने लगते; और उनकी चर्चा में झूमते चलने वाला आदमी शामिल हो जाता। बेपरवाह हंसी को एक राह मिल जाती और हंसी की फुआर में रात की मौनता गाती सी लगती; तभी झूमता-झामता आदमी भी पहुंच जाता; हंसी मुस्कराहट में बदल जाती; और सभी उत्सुक मुस्कराती आखों से अपने ही मुहल्ले के मदहोश आदमी को देखने लगते यद्यपि यह आदमी मदहोश होता; फिर भी वह पुन्ना की दूकान तक पहुंच जाया करता; पहुंचते ही अजीब ढंग से अभिवादन करता; फिर दो-चार पैसे के सेव-लैया अपने इंतजार करते हुए बच्चों को खुश करने के लिये खरीदता, उसे शायद तब अपनी बीबी का मुरझाया हुआ चेहरा याद हो आता और वह उसके लिये एक पान लपटवा लेता; केवल एक पान; और फिर उसकी हंसी स्पष्टतः कह देती कि उसकी बीबी का हृदय पान की तरह खुशी से सुर्ख हो जायगा। वह तो खुद खुश रहता; उस हालत में खोया हुआ; घरेलू परेशानियों से दूर; बस यही खुशी उसे होती; और वह अनाप-शनाप बकता हुआ झूमता-झामता चल देता।

पुन्ना इस थोड़ी सी उम्र में इन आदमियों की नाड़ी पहचान चुका था; वह चेहरा देखकर पान के मसाले छोड़ा करता था। गुस्सा उससे कोसों दूर था। वह ग्राहक की हर

कड़वी बात को एक स्वादिष्ट मजाक के रूप में देखा करता था। उसे कभी भी गुस्सा नहीं आता था; उसका धैर्य अमावसी रात सा गाढ़ा और गहरा था; वह एक ही साथ बेझिझक दो ग्राहकों के लिए दो विभिन्न सौदे तौल दिया करता था। यदि एक चार सेर चांवल मांगता तो उस समय भी उसकी भाव मुद्रा वैसी ही रहती जितना एक छटाक आलू तौलते वक्त रहा करती थी।

हां एक छटाक आलू तौलने का वह अभ्यस्त हो गया था; उसके पड़ोस की एक लड़की एक छटाक आलू लेने आई। पुन्ना का एक साथी हैरान होगया, आश्चर्य से वह बोला, 'एक छटाक आलू ? उसे विश्वास नहीं हो सका, उसने कहा, जा भूल गई होगी; फिर पूछा आ..?

पुन्ना नाहीं न कर सका; लेकिन वह लड़की चकराई सी पुनः बोल उठी, 'अच्छा हां पूछ आती हूं ? और वह चली गई ! बातें आरंभ हो गई यहां-वहां, की, पुन्ना भी बातें करता रहा, हंसता रहा और इसी बीच उसने एक छटाक भर का आलू तोल कर पान के

पटरे पर रख दिया। वह लड़की तब फिर आई, उसने जोर देते हुए कहा, हां..हां...एक ही छटाक तो मंगाया है...? तीन छेददार पैसे उसने दे दिए और उस आलू को लेकर वह लड़की उस अंधेरे में भाग गई। पूछने वाला देखता रह गया, वह उस लड़की के बाप को जानता था; उसके घर के सदस्यों को जानता था; जो कम से कम भी पांच हैं; और उसने अभी अभी वह एक आलू देखा था...? वह सोच रहा था; तभी एक और काली काली मैलीसी लड़की पहुंची वह एक धोबी की लड़की थी उसके आते ही पुन्ना बोला, क्यों क्या अब की महीने भर में कपड़े लाएगी? वह लड़की हंस दी बोली, 'कल फज्जरमिलेंगे?'

फिर सिर खुजलाते हुए उसने कहा, 'हां दो पैसे की दाल दे दे?' पुन्ना ने तराजू उठाते हुए कहा, कल जरूर ले आना? और फिर हंसते हुए बोलने लगा, हां बाबू महीना भर होने को आया, लेकिन बाबू तो उस अंजलि भर दाल को देख रहे थे जिसे पुन्ना एक दोने में डालकर उस काली लड़की को थमा रहा था। लड़की ने मीठे दुलराते स्वर में कहा, 'थोड़े चने दे दे।'

पुन्ना ने उसके हाथ में दो चने दे दिए, सिर्फ दो चने; और स्वतः पुन्ना बोला, क्या करें बाबू? तब तक वह लड़की, हाथ में दोना लिए अंधेरे की डरावनी शक्ल से बचने के प्रयास में गुनगुनाती दौड़ती चली गई।

बाबू के दिमाग में आलू और दाल की तादाद खौल रही थी, पुन्ना अपनी स्वाभाविक गति से अपनी बातें किए जारहा था; लेकिन बाबू उस आलू का छीला जाना कटना, छौंकना और उस बर्तन में पानी का भरा जाना भी देख रहे थे; सोच रहे थे बहुत कुछ; तभी उस आलू ले जाने वाली लड़की का बाप पहुंच गया। उसकी खँखार ने बाबू का ध्यान उस ओर खींचा; वह अपनी आस्तीन से मुँह पोछता आ रहा था; उसने अपनी जेब से बीड़ी निकाली और पुन्ना की दुकान में प्रकाश देते दिए की ओर झुक पड़ा।

बाबू चुपचाप अपने विचारों में खोए चल दिए। उसने बीड़ी का धुआं उगलते हुए अपना परिचित प्रश्न किया, सुनाओ जी कोई हाल चाल...?

बाबू अंधेरे के घेरे में पहुंच चुके थे। पुन्ना तराजू की खटर..खटर..के साथ समाचार सुनाने लगा; और वह बीड़ी का धुआं पीता पीता हां...हां...करता गया?

यद्यपि बाबू अँधेरे में था, तो उसे दुकान की चर्चा स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रही थी; साथ-साथ उसके दिमाग में विचारों का धुआं और भी गाढ़ा होते जा रहा था; और वह पुन्ना की दुकान से काफी दूर निकल चुका था।

श्री हरिशंकर परसाई

बेला लहक उठेगा

श्री हरिशंकर परसाई

नई आशा, नई प्रतिभा...........

मध्यप्रदेश के नवीन कथाकारों में परसाई जी का स्थान निश्चित् हो चुका है। उनकी व्यंग-विनोद पूर्ण लेखनी ने अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक पाठक के मन को रिझाया है।

मनोरंजन प्रधान, व्यंगात्मक शब्दचित्र और कहानियां लिखना ही अधिक प्रिय; लेखक की दृष्टि में साहित्य, साहित्यकारों के लिये बाद में, जनता के लिये पहिले है। परसाई जी का साहित्य सृजन कल्पना से कहीं अधिक, दैनिक जीवन की यथार्थ परिस्थितियों पर निर्भर है।

सरल, साफ, सुलझी हुई भाषा; चुटकी भरने में कुशल। सामयिक समस्याओं पर लिखने की ओर अधिक रुझान। परसाई जी की लेखनी में गुलाब की प्रफुल्लता है, साथ ही कांटों का तीखापन भी; विचारों में सुबह की ताजगी है, और पाठक के मन को हरा भरा करने की शक्ति।

निवास स्थान, जबलपुर।

नवयुवक। इकहरा बदन। गौर वर्ण—बादामी रंग की झलक। बड़ी आंखें। नुकीली नाक। चमकदार ललाट। खद्दर का पैजामा कुरता; बात बात पर हंसने का स्वभाव। भीड़ में घुसकर सामाजिक जीवन को परखने की आदत। नई आशा, नई प्रतिभा, नई दृष्टि— सम्पन्न कलाकार की कहानी आपके सामने प्रस्तुत है।

बेला लहक उठेगा

दादा उस अवस्था पर पहुंच चुके थे जब आदमी 'फिल्म इंडिया' छोड़कर 'कल्याण' पढ़ना शुरू कर देता है। कुछ अवस्था के कारण और कुछ उनकी सज्जनता के कारण हम लोग सब उनका आदर करने लगे थे।

सन १९४२ में हम लोग सब स्वतंत्रता का मूल्य चुकाने के लिए कारावास भुगत रहे थे—नजरबंद थे। भिन्न भिन्न स्थानों से पंछी इकट्ठे एक पिंजड़े में बन्द कर दिए गये थे। पक्षी में और हम में यही फर्क था कि पक्षी अनिच्छा से बंधन में बंधकर स्वतंत्रता खो देता है और हम स्वेच्छा से बंधन में बंधकर स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे।

कारावास के नीरस जीवन में कुछ सरसता तब आ गई जब दादा इस बैरक में स्थानांतरित होकर आ गये। स्थानांतरित इसलिए किए गए थे कि दादा स्वास्थ्य रक्षा के लिए रोज सबेरे नीम की पत्ती पीसकर पीते थे। रोज सबेरे नीम की पत्ती की फरमाइश से जब जेल अधिकारी तंग आ गये तब दादा की बदली इस बैरक में कर दी गई क्यों कि बैरक के सामने एक छोटा नीम का पेड़ था।

दादा आते ही सब लोगों में घुल मिल गये। उनकी अपनी मान्यता थी, अपने विश्वास थे। अपने विचार थे और इनका पालन वे बड़ी निष्ठा से करते थे।

उनका विश्वास था कि शीर्षासन करने से सफेद बाल काले हो जाते हैं। दूसरे ही दिन से उन्होंने सबेरे बैरकमें हम १५-२० आदमियों को लाईन में खड़ा करके शीर्षासन कराना शुरूकर दिया। एक दिन जेलर जब वहां से निकला तो १५-२० आदमियों को दीवाल के सहारे उलटे लटके हुए देखा तो अचंभे में आ गया। पूछा, "यह क्या हो रहा है?" दादा ने टांगें नीचे फेंकी और कहा, "यौगिक क्रिया है। बुढ़ापा कभी नहीं आता। रोज किया करिये।" सूक्ष्म उत्तर दे कर दादा ने फिर पांव ऊपर फेंके और शीर्षासन की स्थिति में आ गए।

नीम की पत्ती वे रोज पीते ही थे। उनका विश्वास था कि नीम में तीस प्रतिशत

शक्कर रहती है और उन्हें इन दिनों नीम का विश्लेषण करके शक्कर प्राप्त करने की धुन सवार थी ।

दादा के पितामह और पिता वैद्य थे । एक दो गांव के मालगुजार भी थे । वैसे दादा बड़े सच्चे बड़े लगन शील, बड़े सहृदय आदमी थे । अपने पितामह की प्रशंसा करने म वे अलबत्ता अधिक उत्साह दिखलाते थे । कहते थे, "बाबा ऐसे थे कि आदमी की सूरत देखकर नाड़ी की गति बतला देते थे । .....एक बार हमारी दादी की मृत्यु हो गई । बाबा दूसरे गांव गये थे । लौटकर आये तो एक चुटकी दवा लेकर जो नाक में डाली है,कि जीव, जो आधे आसमान तक उड़ गया था, वापस लौट आय । "

एक दूसरी घटना को वे यों कहते थे "एक दिन रामनगर के राजकुमार घोड़े पर से गिर पड़े । और दो-दो फेक्चर पावों में; तीन-तीन हाथों में; चार फेक्चर सिर में, और एक-एक दोनों कानों में । डाक्टरों ने जवाब दे दिया । और तब बाबा ने एक पुड़िया दवा की मुंह में डाली । दवा मुंह में पूरी गई भी नहीं थी कि राजकुमार कूदकर घोड़े में चढ़ गए।"

हम जानते थे कि पितामह के प्रति भक्ति के कारण ही दादा उनकी कुशलता के 'अतिशयोक्ति पूर्ण किस्से गढ़कर सुनाते हैं ।

दादा बड़े सुपठित थे । हिंदी अंग्रेजी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे । अत्यन्त सहृदय और स्नेही ! घर से शुद्ध घी मंगाकर अपने हाथ से पका कर पकवान हम सबको बड़े प्रेम से खिलाते थे । अगर किसी की धोती या कुरता उन्हें मैला दिख जाता, तो वे उसे साबुन लगाकर धोकर डाल देते । हम लोगों में किसी का सिर भी दुखता तो दादा सारी रात सिरहाने बैठकर काट देते ।

दादा बड़े हठी स्वभाव के थे । उनकी वस्तु अन्य कोई छू भी लेता तो वे आपे से बाहर हो जाते । वैसे स्वेच्छा से वे अपना सब कुछ दे सकते थे, पर अपनी हिफाजत से संभालकर रखी हुई वस्तु को कोई गड़बड़ करता तो उन्हें असह्य हो जाता । एक दिन उनकी धोती बाहर सूख रही थी और इतने में पानी बरसने लगा । दादा सो रहे थे । मैंने धोती-समेट कर भीतर रख दी । दादा जब सोकर उठे तो बड़े रुष्ट हुए । ने लगे, "तुमने क्यों उठाई उसे ? भीग जाने देते; गल जाने देते; मेरी चीज उठाने को किसने कहा था?"

२ अक्टूबर गांधी जी का जन्म दिन था। हम सब लोगों ने तय किया कि प्रत्येक एक बेला लगाए। हम लोगों ने अपने अपने बेला लगाए और जड़ोंमें बारीक़ मिट्टी, हल्के से डालकर पानी देने लगे। परन्तु उधर दादा ने अपने बेला की जड़ में रात से कूट कूट कर मिट्टी ठूंस रहे थे। हमने कहा, "दादा! यह क्या कर रहे हैं आप? मासूम पौधा है, सूख जायगा।"

दादा ने जवाब दिया, "तुम नहीं समझते। बेला महा 'जड्ड' पौधा है। इसको ऐसे ही धांसना चाहिये। और तुम लोग इसको पानी कहीं मत डाल देना। बिना पानी के ही लहक उठता है। ठीक पंद्रह दिन बाद देखना! लहक उठेगा।"

दादा के अडिग विश्वास को भला कौन डिगा सकता था। हम सब चुप रहे। सोचा ये तो अपने मन की करेंगे।

हम लोग प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अपने अपने बेला में पानी देते; मिट्टी संवा–रते। उधर दादा उसके पास बैठकर ध्यान से उसके कुम्हलाये हुए पत्तों को देखते। हम जानते थे कि दादा हमारी बात नहीं मानेंगे फिर भी सामने सूखता हुआ पौधा तो देखा नहीं जा सकता न! सो हम कहते, "दादा! उस बेचारे को क्यों सुखाये डाल रहे हो? उसमें पानी डालो!"

दादा उसी आत्म-विश्वास से हमारा उपहास करके कहते, "तुम लोग अभी समझते नहीं हो। बेला का स्वभाव ही ऐसा है। उसे पानी वानी नहीं चाहिए। वह तो एक दम लहक उठेगा।"

धीरे धीरे बेला के पत्ते एक एक कर पीले होकर गिरने लगे! और दादा का विश्वास भी पत्तों के साथ ही धीरे-धीरे गिरने लगा। पर उपर से वे वही दृढ़ता और आत्म-विश्वास का भाव धारणकिये थे।

पन्द्रहवें दिन उसमें तीन अधसूखे पत्ते मरणासन्न आदमी की अंतिम लालसा के समान हिलते हुए थे।

हम लोगों ने कहा, "दादा अब उसके पास क्या बैठे हो? बेचारे का काम तमाम हो गया।"

दादा बोले, "अरे तुम लोग पागल हो ! बेला का तो यह स्वभाव ही है। एकदम लहक उठेगा।"

उसी दिन रात को हम लोगों को एक शैतानी सूझी। हम लोगों ने आधीरात को चुपचाप दादा के उस बेला को उखाड़कर दूर फेंक दिया और उसके स्थान पर कतार का अन्तिम हरा-भरा बेला लाकर गाड़ दिया।

सबेरे हम लोग अपने-अपने स्थान से दादा की प्रतिक्रिया देखने लगे।

वे जल्दी उठ आए थे। अपने बेला के पास गए। देखकर एक क्षण स्तब्ध रह गये। खड़े खड़े न जाने क्या सोचते रहे। फिर पास बैठकर बड़े ध्यान से देखने लगे। बेला सचमुच लहक उठा था। पर उनका मन विश्वास नहीं करता था कि सूखा बेला यों लहक उठेगा।

थोड़ी देर में कोई बात उनकी समझ में आई उनकी भृकुटी चढ़ गई और वे क्रोध से 'हूँ ऊँ' 'हूँ ऊँ' शब्द करते हुए बरामदे में घूमने लगे।

दादा के मन में संघर्ष चल रहा था। वे जानते थे कि सूखा बेला रात भर में ऐसा लहलहा नहीं सकता। वे यह भी जान ही गए थे कि उनके बेला को उखाड़कर उसके स्थान पर यह हरा बेला लगा दिया गया है। अपने बेला के उखाड़े जाने पर वे क्रुद्ध भी थे पर कुछ कह नहीं सकते थे; क्योंकि कल तक वे कहते रहे थे कि बेला एकदम लहक उठेगा। वे निरंतर 'हूँऊँ' की आवाज करते हुए आवेश में बरामदे में घूम रहे थे।

हम लोग किसी प्रकार हंसी दबाकर अपने बेला को संवारते बहारने निकले। दादा से 'वंदेमातरम्' किया जिसका जवाब उन्होंने भुन्नाई हुई मुद्रा से 'हूँउं' कहकर दिया।

थोड़ी देर बाद उनका क्रोध फूट पड़ा। वे बोले "हमारा बेला किसने उखाड़ा ?"

मैंने कहा, "बेला ? बेला ये तो लगा है !" और फिर सब साथियों को बुलाकर मैंने कहा, "अरे जरा सब लोग यहां तो आओ ! इधर देखो। ये दादा का बेला लहक उठा। दादा ने कहा न था कि सोलहवें दिन बेला एकदम लहक उठेगा। कल तक तीन सूखी पत्तियां थीं और आज कैसा हरा हो गया है। वाह !"

सब लोग आ गये, और कृत्रिम आश्चर्य से आंखें फाड़कर उसे देखकर आपस में

कहने लगे, "अरे देखा ! कल तक हम लोग दादा की बात का विश्वास नहीं करते थे। अब देखो कैसा लहक उठा है !"

हमारे मुंह से प्रशंसा सुनकर दादा का क्रोध बढ़ने लगा। अपना बेला चाहे सूखा ही क्यों न हो, उखड़ जाना दादा को असह्य था। अपराधी का पता लगाकर उसे जब तक दस-पांच गालियां न सुनाते तब तक उनका क्रोध शांत न होता।

हम लोग हरे-भरे बेला को निहार निहार कर उसकी प्रशंसा कर रहे थे। कोई पत्तों की तारीफ करता कोई डंठल की। प्रशंसा का प्रत्येक वाक्य दादा को तीर सा चुभता था और वे मिल मिलाकर बड़े जोर से "हूँऊं" कहकर फुफकारते थे।

एकाएक चिल्लाये, "मुझे ही बेवकूफ बनाते हो ! भला सूखा हुआ बेला रात भर में लहक उठेगा ? बताओ किसने मेरा बेला उखाड़ा है ?"

हम लोग हंस पड़े ! मैंने कहा "यही तो हम भी कहते थे कि सूखा बेला सोलहवें दिन नहीं लहक सकता !"

दादा क्रोध से कमरे में चले गये और उनका वनस्पति विज्ञान का एक प्रयोग समाप्त हो गया।

श्री शेष

अनागता

श्री शेष

नई आशा, नई प्रतिभा ।

'शेष' का पूरा नाम श्री कृष्ण किशोर श्रीवास्तव है ।

मध्यप्रदेश के नवीन कथाकारों में शेष का स्थान आशा प्रद है । शेष जी एम. एस. सी. और साहित्य रत्न हैं; इस अद्‌भुत मेल ने उनके साहित्य को एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है ।

शेष जी जीवन की स्थूल परिस्थितियों के निरूपण के साथ कोमल अनुभूतियों का चित्रण करने में निपुण हैं । उनकी प्रत्येक कहानी में एक काव्यमय वातावरण रहता है और रसवन्ती भाषा । सूक्ष्म भाव; कुमार अव्यक्तिकरण । निश्चित् बौद्धिक धरातल रहने के कारण, शेष की कहानियां साहित्यिक अभिरुचि के बिना समझना कठिन है । शेष जी नागपुर विश्वविद्यालय में असिस्टेंट रजिस्ट्रार हैं । नवयुवक ।

ऊंचा कद । झूमता अलमस्त शरीर । भारी आवाज । अभिनयात्मक ढंगसे वार्तालाप । विनोदी स्वभाव । खद्दर का लम्बा कुरता, चौड़ा पायजामा । हमजोलियों में बैठकर ठहाके मारकर हंसने की आदत–जैसे जीवन महान् आनंद है, उल्लास का पर्व है !

'शेष' जी की 'अनागता' कहानी पाठकों के हाथों में -------

अनागता

जहां जीवन का मृत्यु से युद्ध स्पष्ट हो जाता है जहां मानव की वेदनायें-पीड़ायें मूर्च्छना में घोलकर उसे संतोष पर बाध्य किया जाता है। जहां के हृदय, भीगी कराहें सुनकर स्वयं को नहीं, द्रवों की शीशियों को टटोलते [हैं, जहां सभ्यता रूप खोलकर मूल्य पाती है ! अस्पताल !! डाक्टर !

जीवन और मृत्यु के युद्ध का नश्वर साधन। वेदान को रंगीन द्रवों में घोलने का प्रयास करने वाला मूढ़। हृदय चीरकर भी उस पर अंकित लेख पढ़ने में असमर्थ-- अज्ञानी ! डाक्टर ! अस्पताल का प्राण !!

शव और प्राण-इनकी संधि; जीवन। ऐसी अनेकों संधियां न टूटें इसी कारण अस्पतल में जीवन था। आहतों की नियमित कराहों के कारण, अस्पताल के प्राण-डाक्टर विश्राम की इच्छा लादकर भी सतर्क रहने का प्रयत्न कर रहे थे। आहतों में एक ही नवीन था --नीहार। पंजाब की संकीर्ण जातीय भावनाओं से अभिशप्त हृदय की विछलन पर विचारों का आवरण डाले--कभी पीड़ा से कराहता--कभी विचारों में मौन हो जाता......

"...तुम सुन्दर हो लता--सुन्दरतम नहीं। तुमसे अधिक सौंदर्य मैंने देखा है--फिर भी अब मैं केवल तुम्हारी ओर देखना चाहता हूँ। हां मेरी लतिका।

"हममें-तुममेंऔर मुझमें-अन्तर था तभीतो मैं तुम्हारे समीप आसका। अब अन्तर नहीं पर हमारे अन्तर में यह द्वन्द्व क्यों ? देखो ऐसा न हो, कहीं वह अन्तर इस अन्तर में समा जाये। ......यह सोचकर मैं कितनी मूर्खता करता हूँ--यह तुम पर अविश्वास जो है, पर करूं क्या इसी मूर्खता ने ही तो तुम्हारा मूल्य बताया है...

"आज यह लेखनी का साथ कैसा ?" नीहार को जैसे किसी ने झकझोर दिया।

'लता ! जब विषय अनिर्वचनीय होता है तो हृदय का भार इसी एक साधन के द्वारा उतारा जा सकता है।' नीहार ने एक अस्वाभाविक गम्भीरता से कहा ! और लेखनी से हथेली पर कुछ लिखने लगा, शायद लता ! लता ने डायरी उठा ली। नीहार

चाहता भी यही था। रोकने का उसने एक छोटा सा प्रयत्न किया जिसमें 'न' कम और 'हां' अधिक था। लता समझती थी और इसलिये डायरी प्राप्त कर सकी। डायरी लिये लता खिलती रही-नीहार जमता रहा-मुग्ध लता के हास में अपनी इयत्ता का ज्ञान करने, चिर बुभुक्षित लालसा को सुप्त करने या उकसाने-यह हमें नहीं मालूम !

'नीरस विज्ञान का विद्यार्थी भी सरसता छूने लगा ?' लता ने एक चुटकी ली, नीहार गल गया !

'यथार्थ पर आदर्श का आवरण डालकर हम सभ्य हैं और सरसता को नीरसता से आवृत किये हम चिंतक हैं। सरसता छूने का प्रयास पहिले नीरसता से ही टकराता है लता ! पर क्षणिक होती है नीरसता क्योंकि लक्ष्य तो सरसता ही है न ?'

नीहार और कहे जाता, पर लता को इतना धैर्य कहां था कि केवल उसीकी सुनती। उसे तो नीहार से बातें करना थीं–बातें, मानवता के रहस्य की जासूस ! लता की बातें क्या थीं–नीहार के कार्यों पर मीठे व्यंग और उसके साहस पर मादक चुटकियां –'तो तुम इस ब्यालीस को वह बीता सनतावन बनाना चाहते हो ? अतीत को वर्तमान में खींचने के लिये शक्ति-संयम कर रहे हो ?...

सरकार के विरुद्ध षड़यंत्र रचकर अपने अध्ययन का अच्छा परिचय दे रहे हो...' 'मुस्कान का अवगुण्ठन डाले उसके अधर हिलते और ब्रीड़ा के अंतराल में खड़े नेत्र कहते –'अधरों का कथन असत्य है !' अधर हिलते रहे, नेत्र कहते रहे, पर जब लता उसके प्रेम पर आई तब अधरों की चेतनता खो गई, नेत्रों की सीमा बनी ब्रीड़ा, अरुणिमा बनकर कपोलों पर छा गई और पलकें नीड़ पर बैठे थके पक्षी के पंखों सी दब गईं ! नीहार को अवसर मिला। नाटकीय ढंग से उसने कहा–'लता हमने तुम्हें क्षमा किया ! नारी हो न ?'

लता तिलमिला उठी। 'अच्छा तो यह बताइये आप नारी कहते किसे हैं ?' लता का नारीत्व प्रेम का गला दबा रहा था !

'विधाता की सबसे बड़ी भूल को !'

'और पुरुष ?'

'विधाता की संघर्ष-प्रिय अनुभूति को !'

'अर्थात पुरुष ही सब कुछ है, नारी कुछ नहीं ! वह केवल विधाता की भूल है। –तो विधाता यह भूल सुधार क्यों नहीं लेता ?'

'लता ! कभी कभी अनजाने कुछ ऐसी मधुर भूलें हो जाती हैं कि उनका सुधार और बड़ी भूल है। नारी का निर्माण विधाता की एक ऐसी ही भूल है ! मैं भी तो एक भूल कर चुका हूँ पर सुधारना नहीं चाहता !'

'कौन सी भूल ?'

'यही, विधाता की भूल को अपने जीवन से बांधना !'––और नीहार हंस पड़ा, लता सकुचाई, पर उसने देखा––नीहार उसके हर अंग पर छाया है। नीहार उठा और लेखनी लता के केशों में लगा दी––'ये मेरा नीरस फूल'––लता खिल गई और.....

'लता-मेरी लतिका' ...आह ! नवीन आहत कराह उठा। नर्स दौड़ी, डाक्टर आया और वह उबलकर शांत हो गया। स्मृति छलती है, आदर्श ठगता है पर यथार्थ तो ईमानदार होता है–और इसी कारण नीहार शांत हो गया। डाक्टर ने बड़ी कठिनाई से अपने कोष से कुछ सहानुभूति के शब्द निकाले-उसकी देशभक्ति को सराहने का प्रयत्न प्रारंभ किया पर नीहार फटी आंखों से अस्पताल का सफेद छत निहार रहा था-जैसे प्रकाश से आये नेत्र अंधकार में अपना मार्ग खोजें......

अमृतसर के समीप एक सेवादल का केम्प। खेमों से हटा एक नाला सारे शहर की गंदगी ढोता। उससे मिली एक पक्की सूखी नाली; जैसे आदर्श यथार्थ से मिलने के प्रयास में ! दूर जहां इस आदर्श और यथार्थ की सीमा मिट जाती है, वहां एक नंगा-नीरस पर जिज्ञासु बीहड़ मार्ग–श्यामकाय पथरीली घाटियों में उतरता ! उन ऊबड़-खाबड़ चट्टानों में सौंदर्य नहीं और न उस घाटी पर पुती उस उदासीन कुचली घास में ही कुछ आकर्षण है, पर उनके मध्य सरकते सूर्य को चार नेत्र देख रहे हैं ! मौन ! दो करुणा से सजल, दो प्रज्ञा से पीड़ित।

मौन !

वह तो दूसरों के लिये होता है पर स्वयं वह वाचाल होता है, बोलता है। उसने लता से कहा-प्रयाग से चलते समय नीहार को विश्वास दिलाया था कि तुम उसके

कार्य में बाधक न बनोगी और इसी कारण तुम्हारा हठ पूरा हुआ था। तुम अपनी दुर्बलता की बेड़ियों से उसके पैर जकड़ रही हो, नारीत्व की बुभुक्षा ले उसके पौरुष पर छा रही हो.........

लता ने मौन का गला घोंटा और सिसकियों में खुलने लगी। नीहार ने देखा – आंसुओं से उसका वक्ष भीग रहा है और तप्त निश्वासों से प्राण झुलस रहे हैं। सुरभित केशों में उंगलियों की कंघी चलाकर उसने कहा 'लता हमें अभी एक नहीं होना है, है। जगत के कार्य दो रह कर ही किये जा सकते हैं और जीवन के एक होकर। अभी हमें जगत की ओर देखना है!'

'और जीवन भूल जाओगे? इकाई भूलकर समूह की चिंता करोगे?' लता का तर्क हिचकियों में झूल रहा था! चिन्ता जब समूह से होकर इकाई पर आती है तभी वह मानवता का प्रमाण होती है, अन्यथा स्वार्थ बनकर ठिठुर जाती है'-न जाने किस शक्ति से इच्छाओं की समाधि पर चढ़कर नीहार कह गया, और स्वयं में सिमटता, अपनेपन का बोझ लादे, लड़खड़ाते पैरों घिसटता सूर्य घाटी के पीछे गिर गया!

एक उदास सन्ध्या!

और फिर एक सिसकती रात!

उदास नीहार और सिसकती इच्छाएं। आंखों के क्षार में अतीत की फिल्म धुल रही थी– उनका धुन्धालापन शायद नीहार को अप्रिय था। समय चला, रात ढली, वह छलका। टिटिहरी के चिरपरिचित स्वर ने न जाने क्यों आज उसके जीवन पर धिक्कारा। उलूकों के हत्यारे स्वर ने नीरवता की छाती पर चढ़कर उसके आदर्शों का उपहास किया। उसके पसीजे नेत्र तकिये में दब गये। चेहरे ने तप्त श्वास का अनुभव किया। दूर कहीं बिल्लियों के लड़ने-रोने का स्वर आया और उन पर शासन करता श्वानों का भोंकना। नीहारके सिर का भार नाक से हट कर दाढ़ी पर आ गया-दोनों हाथों से उसने अपने बिखरे बालों को कड़कर स्वयं को झकझोर दिया। पीड़ा बढ़ी, संघर्ष बढ़ा और वह बिस्तर छोड़ खड़ा हुआ; द्वार का पर्दा हटा, उसने बाहर झांका, अन्धकार तारोंके दांत निकालकर हंस रहा था -पर्दा गिर गया। नीहार स्वयं को संभाल रहा था उन रटे उपदेशों से, सुने सूत्रों से! पर न जीवन रट का पूजक है और न सूत्रों का समर्थक! वह तो इन्हें रौंदकर पथ बनाता है। मूर्ख नीहार! पदचिन्हों में कांटे गड़ा कर चाहता है कि उन पैरों में सिहरन भर दें।

संसार के रहस्य समझ जो हंसता है, अपने रहस्य समझ वह रोता है। नीहार रोया था और रात चली गई थी ! ...उधर भोर के नेत्र खोलते ही सेवादल नायक की आज्ञा सुनवाई और विशाल नृशंसता को मानवता का पाठ पढ़ाने मुट्ठी भर आदर्श चला।

ओह ! वह भगदड़ ! नारी का क्रन्दन ! शिशु का रोदन और निहत्थे की हाय और जीवन की इस सस्तेपन की रक्षा में घिसता आदर्श...! कोलाहल ! खिड़कियों से कूदता, द्वारों से भागता, गलियों में टकराता, गिरता दौड़ता कोलाहल ! प्राणों में भरता कोलाहल ! ! ...
कोलाहल···

आजाद हिन्द जिन्दाबाद...राष्ट्रपिता बापू की जय...स्वतंत्रता अमर हो...

और नवीन आहत नीहार का ध्यान भंग हुआ—

डाक्टर यह कोलाहल कैसा ?

डाक्टर ने उठकर खिड़की का पर्दा हटा दिया—हमारा आनन्द, हमारी व्याकुलता, जो लाल किले पर तिरंगा देखने बढ़ी जा रही थी ! रायसाहबी के भार से सदैव झुके रहने वाले डाक्टर के नेत्रों से निर्बन्ध आनन्द झांक रहा था और उधर दो निर्लज्ज, पर ईमानदार आंसू नीहार की कोरों में सिमट आये— यदि इन सबों ने इसका मूल्य दिया होता तो संभवतः इतने प्रसन्न न होते— उसकी वेदना मौन तोड़ना चाहती थी ! पर मौन सकुचाहट में बंधा रहा-डाक्टर के रटे दवाइयों के नाम सा शहर का कार्यक्रम सुनाता रहा...

"कथायें ! भजन ! गीत ! और नाच ! ! डाक्टर ये सब क्यों !" वह सहसा विरोध कर उठा।

'इस पुण्यपर्व की खुशी में।'

"नहीं नहीं डाक्टर ! ये सब बन्द करा दीजिये। सत्यनारायण की कथा मेरे प्रकाश की कथा नहीं-क्या वह सत्य नहीं ? मेरी लता की प्रशंसा के गीत नहीं—उन सबकी प्रशंसा के जो इस दिन के लिये अपने आप को मिटा बैठे ?...और नाच यह भी नहीं डाक्टर ! जिस भूमि पर हमारे खून की बूंदें सूखी हैं उन पर नूपुरों की रुनझुन न हो

नहो डाक्टर-और नीहार के नेत्र मुंद गये...उनकी शांति ने कहा—यह दृश्य हम न पी सकेगें डाक्टर ने अपने सदैव के व्यवहार के अनुसार नीहार के सिर पर हाथ रखकर धैर्य का उपदेश दिया और स्वाधीनता के आनन्द का चित्र खींचा जैसे एक डाक्टर रोग की परीक्षा के पश्चात परहेजों के नाम गिना रहा हो। इसी धुन में टाई सम्हालते हुये डाक्टर ने सिर घुमाया तो अन्दर के दरवाजे पर चिन्दियां लटकाये एक नंगा घिनौना बालक सूखी रोटी का टुकड़ा हाथों और दातों के बीच नचा रहा था—बालक, जिसे आज की सभ्यता न छू पाई, न आज का वैभव पहचान पाया—वही अस्पताल के मेहतर धनिया का जीवन ! डाक्टर ने घूरकर उसकी ओर देखा—यदि वे दीनता की परिभाषा वाले दो अबोले नेत्र अपनी तन्मयता से हटकर इसका आभास पा जाते तो बालक वहां न रुकता... पर वह खड़ा रहा-जैसे डाक्टर की वेशभूषा को उसका दूसरा छोर बता रहा हो ! उसकी इस स्वतंत्रता पर डाक्टर को क्रोध आया-और डाक्टर के इस क्रोध तथा स्वाधीनता के आनन्द पर रोटी का टुकड़ा दातों से मिलकर 'कर्रर' की ध्वनि में हंस पड़ा। पिसे जले गेहूं ने कहा—'मैं तुम्हारी भूख का मूल्य क्या जानूँ ? मैंने तो घिसकर जलकर उसे बुझाना ही सीखा है..! फिर एक कठोर स्वर बालक का रुदन-नीहार की कराह! और इन तीनों को रौंदता सड़क का कोलाहल ! उन्मुक्त जीवन की झांकी ! उन्मुक्त, अबाध जीवन की ऐंठन ! !

...यह समूह झण्डावन्दन के लिये जा रहा है— इन आगतों में उसके जीवन की ममता उसके उमगों का आदर्श भी जो हो सकता है-हां लता भी तो आ सकती है... 'डाक्टर मैं भी चलूंगा झण्डावन्दन देखने' घबराये स्वर में नीहार ने कहा ! उस पुरुष के नेत्र पौरुष पर दुर्बलता का आवरण डाले याचना कर रहे थे ! धिक्कार ! नहीं, वह तो मानव का यथार्थ था ! पर व्यर्थ ! वह इस समय अस्पताल का अंग था जहां केवल नियमों को जीवित रहने का अधिकार है—नियमन टूटा और टूट गई नीहार की आस !...

उसे क्या, संसार आनन्द मनाता रहे, स्वाधीनता की अभ्यर्थना करता रहे, उसके लिए वह थी अनागता... और लता ? नहीं नहीं... वह तो उसके जीवन में वर्षों पूर्व आ चुकी थी —— साध बनकर आ चुकी थी और साध न तो घटना जानती है और न लौटना !

अलापते दिवस ।

वे गुनगुनाती संध्याएं ।

'अब तो जगत के कार्य समाप्त हो गये न? लता ने नीहार के हाथ से 'एटामिक' फिजिक्स' की पुस्तक छीनकर टेबल पर पटक दी और दोनों हाथों की तीन तीन उंगलियों में केशों की तीन लटें नचाने लगीं।

'लता ! कुछ वर्षों पूर्व तक वैज्ञानिकों का अनुमान था कि तत्व का सूक्ष्मतम रूप परमाणु है परन्तु नवीनतम अन्वेषणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में प्रत्येक परमाणु एक छोटा सौर-जगत है जिसमें धनशक्ति वाला अंश सूर्य के समान स्थायी रहता है और ऋण-शक्ति वाले अंश ग्रहों के समान उसकी परिक्रमा करते हैं ...' पूर्ववत् गंभीरता से नीहार कहे जा रहा था कि ऊबकर उसने टोका--'मुझे इससे क्या ? मुझे तो अपने प्रश्न का उत्तर चाहिये।'

'यही मैं पढ़ रह था लता ! मैंने सोचा यदि जगत तत्व है तो हमारे जीवन परमाणु-- और अब जीवन ऐसा नहीं कि उसका विश्लेषण न किया जा सके। परमाणु के समान उसके अन्तः में भी संघर्ष है । स्थायी चेतना और उसके चारों ओर इच्छाओं का परिभ्रमण ! वैज्ञानिकों ने परमाणु का विश्लेषण कर 'एटम बम' का आविष्कार किया, मैं जीवन का विश्लेषण कर कोई ऐसी ही शक्ति खोजना चाहता हूँ।'

लता पुस्तक उठाकर उसके छोटे अक्षरों और उसकी टढ़ी सीधी रेखाओं में कुछ अपने लिये खोज रही थी। पर न वहां कुछ मिला, न नीहार के इन शब्दों में ! उसने पुस्तक जोर से टेबल पर पटक दी। नीहार रुक गया ! 'तुम्हें उत्तर चाहिये ? यद्यपि मैं उत्तर दे चुका फिर भी तुम्हारे लिये स्पष्ट कर दूंगा। जगत से मैं जीवन पर आ गया था परन्तु अब जीवन के संघर्ष में उलझा दिया गया हूँ ! समझीं ?' और लता ने सिर हिला दिया--ईयर-रिंग्स् झूल उठे। एक अलकों में उलझ गया, दूसरा घड़ी के बिगड़े पेन्डुलम सा कुछ क्षण हाथ पैर हिलाकर शान्त हो गया ! नीहार की श्वास ने उसकी अलकें हिलाईं और नेत्रों ने एक एक ईयररिंग का साथ बांट लिया।

'तुम मेरी चेतना हो लता' नीहार ने एक गंभीर मुस्कान से कहा--'और मेरी इच्छाओं ने केवल तुम्हारी परिक्रमा सीखी है ! परन्तु प्रकाश को दिए मेरे एक वचन ने इच्छा बनकर उसका सन्तुलन बिगाड़ दिया है ! इसी कारण मैं संघर्ष की ओर झुक गया हूँ।'

'मुझे जीवन की इन बातों में आपका विज्ञान नहीं भाता। साफ साफ कहिए।' उसने टेबल पर रखी पुस्तक पर पेपर उठा कर पटक दिया !

'प्रकाश ने तुम्हारे प्रणय की सौगन्ध रखकर मुझसे पंजाब के झगड़ों में शांति का संदेश ले जाने वाले सेवादल में चलने का वचन ले लिया है' और उसका सिर झुक गया !

'मैं तुम्हारे साथ चलूंगी । इन झगड़ों से मुझे डर मालूम होता है । लता के नेत्र दीवार पर लगे उस चित्र पर टंगे थे जिसमें ऊगता चांद एक ऊंची चट्टान पर से कूदती पहाड़ी निर्झरणी को देख रहा था जो एक शान्त जल-प्रवाह से मिलने आतुर थी।

'तूफान में निडर रहीं और अब उसके बाद डर रह तो' वह गंभीर हो गया।

"तूफान शांत हो गया होता तो मैं हठ न करती।" लता का स्वर धैर्य की सीमा से गिर कर लड़खड़ा गया। नारीत्व के अभिमान ने रुदन रोका पर वह सिसकियों में झांकने लगा और खोने लगा नीहार का ज्ञान, अध्ययन का मिथ्या अभिमान ! पराजय !!

व्यक्ति-व्यक्तित्व ! पुरुष-पौरुष !! तरुण...तरुणाई और नीहार के सामने लगा वह चित्र जिसमें क्षितिज के समीप ताड़ के दो वृक्ष डूबते सूर्य पर हँस रहे थे-काला पड़ गया !

'तुम्हारे' समीप रहने पर मैं कार्य न कर सकूंगा। तुम मेरी चेतना पर छा जाओगी··· नीहार बके जा रहा था कि लता फूट पड़ी। आंसू···नारी का सर्वाधिक शक्तिमय अस्त्र ! नीहार हार गया। पर उसे विश्वास दिलाया गया था कि ऐसा न होगा।

फिर साथियों की वह अपूर्व बिदा ! वह उमंग भरा जयघोष...जयघोष...

इतने तीव्र स्वर में ! आहत चौंक पड़ा ! डाक्टर मैं भी जाऊँगा। अनायास वाणी फट पड़ी ! डाक्टर ने अधमुँधी आंखें कर छत की ओर सिर उठाकर नियम दोहरा दिये और आहत पर दोहरी निराशा छा गई पर साहस ने एक करवट बदली। "तो मैं स्वयं चला जाऊंगा" प्रयत्न भी किया पर पीड़ा के भार से वह भी दब गया।

घड़ी टंगी टंगी चलती रही, कांटे मिलते बिछुड़ते रहे। कोलाहल घटता-बढ़ता, आता जाता रहा ! नीहार के नयन मुंदते खुलते रहे। पलकों पर चित्र बनते, बिगड़ते रहे। पर अवकाश किसे था जो इनकी ओर ध्यान देता। कभी चश्मा साफ करते घड़ी देखते डाक्टर ने सुना तो मैं स्वयं चला जाऊंगा···· कभी डगमगाती चलती, थर्मामीटर झटकती नर्स ने फुसफुसाहट सुनी-'चला जाऊंगा' और फिर न जाने कब वह स्वर शांत हो गया।

और इतने दिनों बाद भी कभी कभी नीहार का स्वर अस्पताल में नीरवता की छाती पर घुटने टेककर डाक्टर को कोसता है वहां के नियमों को धिक्कारता है, और कभी लाल किले के समीप अन्धकार को सिसकारकर कभी न आनेवाली को सम्बोधित करता है – 'लता मैं जीवन में आ गया ।"

श्री आनन्द मोहन अवस्थी

सांप

आनंद मोहन अवस्थी

नई आशा, नई प्रतिभा !

आनन्द मोहन अवस्थी मध्यप्रदेश के सबसे नये कथाकार हैं, जिनका 'बन्धनों की रक्षा' लघुकथा संग्रह, बहुत ही थोड़े समय में लोकप्रिय हो चुका है।

आनन्दजी अपनी लघुकथाओं में भूमिका और उपसंहार के लिये नहीं ठहरते; अनावश्यक की अपेक्षा, आवश्यक के स्वागत को उनकी कथाओं में प्राणवान विकास मिलता है। सहज उद्गार की रसवन्ती कविता की भांति, आनन्दजी की लघुकथाओं में अनुभूति की तीव्रता अधिक हैं; कथानकों के सारे फूलों ने जीवन की मिट्टी से ही संजीवनी शक्ति खींची है।

कथानक, अभिव्यंजना, और बौद्धिक धरातल की दृष्टि से इस नये लेखक ने अभिनव प्रयोग किये हैं।

मध्यप्रदेश के कथाकारों में आनन्द मोहन अवस्थी का स्थान लघुकथा-साहित्य में अग्रगण्य है।

निवास स्थान जबलपुर। घूमना-फिरना, मस्त रहना, पढ़ना और लिखना। छः फुट का स्वस्थ शरीर, विशाल वक्षःस्थल, लम्बी भुजाएँ, छोटी, भावभरी, तरल गहराई लिये आँखें--लम्बा कुरता और ढीला पायजामा। अवस्था बिलकुल नई। सुबह की अँगड़ाई लेती हुई किरण है—नई आशा है--नई प्रतिभा !

सम्हलिये अगले पृष्ठ पर 'सांप' है।

सांप

उस दिन सुबह जब वह जगा तो उसने घर में एक असाधारण हलचल देखी। और उसने छोटे भाई से पूछा, "छन्नू क्या बात है ?"

छन्नू ने बतलाया कि कल रात घर में एक सांप निकला था। और जब नहानीघर में जाकर बैठ गया तो दादा ने उस पर पीतल का बड़ा वाला गंज रखकर उसे उसमें बन्द कर दिया था।

बिस्तर से उठ, वह नहानी घर गया, तो उसने देखा कि वहां छुन्नू मुन्नू, बेबी, चाची, भाभी, सभी भीड़ लगाये हैं।

और वह उन सब पर बरस पड़ा, "यहां भीड़ लगाये क्या खड़े हो ?"

"एक तो रात भर उसे बन्द रखा है और अब, क्या करने का इरादा है ? मैं पूछता हूँ कि उसे रात भर बन्द क्यों रखा गया ! तभी क्यों नहीं मार डाला।"

"नहीं, नहीं, बेटा !" पास में ही बैठी हुई उसकी बुढ़िया दादी बोल पड़ी, 'हमारे यहां नाग पर हाथ नहीं उठाते।"

" इसलिये ही न, कि पीढ़ियों पहले हमारे कुटुम्ब में एक नाग-राज पैदा हुए थे और उनकी मानवीय मां, उनको अपने दूसरे बाल-बच्चों सा ही रखती थी, दूध पिलाती थीं और एक दिन जब वे चूल्हे के पास अड्डा जमाये थे तो उनकी मा की 'ननद' ने उन पर चूल्हे की गर्म राख और बचे अंगारे डाल दिये और तड़प-तड़प कर मरने के बाद, उस रात,उन्होंने अपनी 'मां' को सपना दिया और जिसमें ननद को उसका वंश न बढ़ने का श्राप दिया और अपनी मा को 'दूधों नहाने, पूतों फलने' के वरदान के साथ-साथ यह आश्वासन भी दिया कि उनके वंशजों को कभी कोई नाग नहीं काटेगा ! क्यों, दादी ! इसलिये इस सांप को नहीं मारा जाना चाहिये, न ! लेकिन इस सांप के बच्चे को यहां से भगायेगा, कौन ? मैं तो छूने से रहा"

"और बेटा, यदि गंज के नीचे सांप ही न मिले तो" उसकी दादी बोल पड़ीं।

"तो......सांप ही नहीं निकलेगा ! शायद 'अन्तरधान' हो जायगा ! हूं......"

और बीच में ही उसकी कमअक्ल बड़ी बहिन बोल पड़ी, "हां-हां,भइया, कभी-कभी नाग-देव 'अन्तर्धान' भी हो जाते हैं।" वह गुस्से से तिलमिला पड़ा। उसने कहा कि अभी देखते हैं कि आपके नागदेव अन्तर्ध्यान हो गये हैं अथवा बेदम अधमरे पड़े हैं।

और इतना कह उसने बैठक में झाड़ू लगाते घर के पुराने नौकर बुधुवा को आवाज दी।

सांप को मारने का तो सवाल ही नहीं था और बुधुवा बमुश्किल उसे सन्सी से पकड़ कर घर के बाहर छोड़ आने के लिये तैयार हुआ।

यहां बुधुवा नहानी घर में जाकर गंज उठाने में लगा और वहां वह नहानी घर से दूर ऐसे स्थान में जाकर खड़ा हो गया जो उसकी समझ में सांप के निकल भागने के मार्ग में कभी भी नहीं आ सकता था। और वहां से वह नहानी घर के पास एकत्रित घर के बच्चों को चले आने के लिये कह रहा था। सहमे बुधुवा ने धीरे-धीरे गंज उठाया, तो सब देखते क्या हैं कि उसके नीचे कुछ नहीं है !

और छुन्नू जोर से चिल्लाया, "भइया......भइया सांप गायब हो गया।"

और यह सुन उसकी वृद्धा दादी और बड़ी बहिन-दोनों एक बारगी बोल पड़ीं, "कहा था न, कि वह अंतर्धान हो जायेगा।"

उसने नहानी घर जाकर कोना-कोना छान डाला पर सांप तो गायब ही हो गया था।

नहानी घर का फर्श सीमेंट का था। और गंज बहुत भारी। फर्श पर उसे रखने पर कोई सेंध भी नहीं रहती थी कि सांप रात को ही उसमें से भाग निकलता। बुधुवा द्वारा गंज उठाये जाते समय भी वह नहीं भागा था; क्योंकि किसी न किसी को वह दिखाई अवश्य पड़ता। कहीं दादा ने ही तो गंज खाली स्थान पर नहीं रख दिया था और सांप तभी रात को पकड़े जाने के पूर्व ही भग चुका था। किन्तु, दादा का कहना था कि उन्हें पूर्ण विश्वास है कि सांप गंज में बंदी हो गया था। तो फिर सांप का हुआ क्या?

गर्मी भर रोज रात को वह बेले के फूलों की एक माला खरीद कर लाता था और उसे सिरहाने रख सोता था। उस दिन भी वह एक माला लाया और तकिये के पास रख सोने की तैयारी करने लगा कि उसे याद आई कि बेले की सुगन्ध से सांप आकर्षित होते हैं। और सांप के अन्तर्ध्यान होने की बात गोल गप्पा है और हो न हो वह सांप यहीं कहीं छिपा होगा। और इसलिये यह माल पास में नहीं रखना चाहिये। उसने सोचा कि बगल के कमरे में रख देने से सांप वहां आ सकता है, सड़क पर फेंक देने से वहां अड्डा जम सकता है और किसी राहगीर को ही काट ले तो ! इसलिये सड़क के किनारे गढ्ढा खोद इसे गाड़ देना चाहिये ।

सड़क के किनारे पर बेले के फूलों की माला इन्चों गहरी कब्र खोद और उसमें माला को मिट्टी से ढंक, जब वापिस आकर वह सोया, तो रात भर उसने बुरे-भले सपने देखे। और एक सपना कुछ ऐसा था कि वह असंख्य सांपों से घिरा खड़ा है और वह भागना चाहता है पर उसे भागने का रास्ता नहीं मिल रहा है और कुछ सांपों के चेहरे उसे परिचित से लगे कि जैसे उसके परिचित ही सांपों का रूप धारण किये हों।